धारा...54 ग्रंथांक...262

नैतिक < धार्मिक < आध्यात्मिक गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आचार्य कनकनन्दी के आद्यमार्गदर्शक गुरु
आचार्य विमलसागर जन्म शताब्दी महोत्सव

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. धर्म-दर्शन-विज्ञान-शोध संस्थान, बड़ौत (उ.प्र.)
2. धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, उदयपुर (राज.)

ग्रन्थांक-262 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 मूल्य-51/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त
(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा
चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा
सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

आत्म निष्ठ हेतु मेरी भावना-साधना

(आत्म सम्बोधन-आत्म सुधार प्रायश्चित्त हेतु कविता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे तू आत्मनिष्ठ बनऽऽ
परावलंबन भूत सामाजिक कार्य छोड़ऽऽ आत्म साधना करऽऽ...(ध्रुवपद)

स्व कार्य तेरा अनंत महान् रे!ऽऽ उसकी (तू) साधना करऽऽ
नवकोटि से सतत तू करऽऽ अनात्म कार्य (तू) परिहरऽऽ
सांसारिक कार्य न करऽऽ (1)

पर आश्रित धर्म-प्रभावना (भी) त्यागोऽऽ धनाश्रित भी धर्म त्यागोऽऽ
इसी से तुम बनोगे स्व-आश्रयीऽऽ संकल्प-विकल्प द्वंद्व दूरऽऽ
अपेक्षा-उपेक्षा/(प्रतीक्षा) दूरऽऽ (2)

(प्रायः) अधिकतर लोग होते हैं प्रमादीऽऽ अस्त-व्यस्त संत्रस्तऽऽ
कर्त्तव्यनिष्ठा व समयानुबद्ध भीऽऽ नहीं होते (हैं) अनुशासनशीलऽऽ
स्व-कर्त्तव्य भी न करतेऽऽ (3)

अतएव अन्य के आश्रित काम मेंऽऽ आते हैं अनेक व्यवधानऽऽ
समय-शक्ति का दुरुपयोग होताऽऽ आत्म साधना में (भी) व्यवधानऽऽ
मन्द होता आत्म विकासऽऽ (4)

तीर्थंकर मुनि सम करो विचारऽऽ रहो निस्पृह निराडम्बरऽऽ
ध्यान-अध्ययन व मौन-चिन्तन सेऽऽ आत्म साधना करो निरन्तरऽऽ
'कनक' स्व आत्म उद्धार करऽऽ (5)

सीपुर, दिनांक 27.08.2016, रात्रि 8.40

(सही सूचना के अभाव से मैंने 4-5 बार दूसरों को गलत सूचना दी इसके प्रायश्चित्त के लिए यह कविता आलोचना रूप में बनी व 5 दिन रसगुल्ला व 5 दिन भ्रमण में मौन रहने का प्रायश्चित्त लिया।)

पर निरपेक्ष सत्य (स्व) को पाता चलूँ
(मेरे अनुभूत सत्य को अन्य न समझने पर...)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू (परम) सत्य को ज्ञात/(प्राप्त) करो
जिया रे! तू (परम) सत्य को जानता/(पाता) चलो
जिया रे! तू (परम) सत्य को जाना/(पाया) करो
कोई जाने या न जाने/(माने)ऽऽ इसकी (तू) चिन्ता छोड़ोऽऽ (ध्रुवपद)

सर्वज्ञ भगवान् को गणधर तकऽऽ न जान पाते पूर्णतःऽऽ
लाखों वर्ष तक दिव्य ध्वनि सुनकर भीऽऽ समझ पाते अनन्तवाँ भागऽऽ
क्षायिक-क्षायोपशमिक प्रभेदऽऽ
तथापि सर्वज्ञ न होते अयोग्यऽऽ जिया...(1)

तथाहि मेरे ज्ञान व अनुभव कोऽऽ यदि न कोई समझ पाते हैंऽऽ
उनकी योग्यता नहीं है तज्योग्यऽऽ तुम न संक्लेश कभी करोऽऽ
सत्य को ज्ञात व प्राप्त करोऽऽ जिया...(2)

नाना जीव है नाना भी कर्मऽऽ नानाविध होती योग्यताएँऽऽ
क्षयोपशम में होते असंख्य भेदऽऽ अतः होती भिन्न योग्यताएँऽऽ
तुझे चाहिए अनंत योग्यताएँऽऽ जिया...(3)

अनंतवाँ भाग तुझमें अभी प्रगटऽऽ अभी प्राप्त करना अनंत बहु भागऽऽ
अतएव तुझे अन्य विकल्प त्यागकरऽऽ स्वयं को करना है परिपूर्णऽऽ
स्व उद्धार तू स्वयं करऽऽ
परहित भी यथायोग्य करऽऽ जिया...(4)

परचिंता व कर्तृत्व त्यागकरऽऽ स्व का तू करो शोध-बोधऽऽ
प्रमाद आलस्य ज्ञानमद त्यागकरऽऽ आत्म विश्लेषण से करो पूर्ण बोधऽऽ
ज्ञान-ध्यान/(अध्ययन) से आत्मबोध करऽऽ जिया...(5)

रागी द्वेषी मोही कामी स्वार्थीऽऽ न चाहते हैं आत्म विकासऽऽ
सत्ता-संपत्ति व प्रसिद्धि डिग्री मेंऽऽ होते अस्त-व्यस्त-संत्रस्तऽऽ

इनसे तू रहो माध्यस्थऽऽ जिया...(6)

अज्ञानी से भी घृणा न करोऽऽ उनका भी हित चिन्तन करोऽऽ
पर प्रकाश हेतु स्व-प्रकाशी बनोऽऽ आदर्श से उपदेश करोऽऽ
'कनक' स्व को शुद्ध-बुद्ध करोऽऽ जिया...(7)

सीपुर, दिनांक 14.08.2016, रात्रि 9.06
(यह कविता ब्र. अजय के कारण बनी)

आध्यात्म रहस्यवादी कविता (समयसार का सार)
भारत के स्वतंत्रता दिवस के संदर्भ में...

मेरा परम स्वतंत्रता स्वरूप

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

कार्य-कारण व ग्रहण त्याग से...रहित हूँ मैं चिन्मय रूप...
आदि अंत मध्य से रहित...मैं हूँ स्वयंभू-सनातन रूप...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश रहित...मैं हूँ निर्विकल्प स्वरूप...
जन्म-मृत्यु व जरा रहित हूँ...मैं त्रैकालिक ध्रुव स्वरूप...(1)...

द्रव्य-भाव-नोकर्म रहित...मैं हूँ जीव द्रव्य रूप...
तन-मन-इन्द्रियों से रहित...मैं हूँ चैतन्य अमूर्त रूप...
चौरासी लक्ष योनि से रहित...मैं हूँ अयोनि सम्भव रूप...
चतुर्गति रूप संसार से परे...मैं हूँ पञ्चम गति/(ऊर्ध्व गति) रूप...(2)...

चौदह गुणस्थानों से परे...मैं हूँ अनंत गुण-गण रूप...
चौदह मार्गणा स्थानों से परे...मैं हूँ अपवर्ग स्वरूप...
भव्य-अभव्य विकल्प रहित...मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध स्वरूप...
व्रत-अव्रत व पुण्य-पाप से...रहित मैं हूँ ज्ञायक रूप...(3)...

तर्क-कुतर्क-आग्रह-दुराग्रह परे...मैं हूँ अनंत ज्ञान स्वरूप...
इन्द्रिय-मन व यंत्र ज्ञान परे...मैं हूँ स्व-सम्वेदन स्वरूप...
पंथ-मत व जाति-लिंग परे...मैं हूँ स्व-अस्तित्व रूप...

वाद-विवाद वैर-विरोध परे...मैं हूँ शुद्ध अनेकांत रूप...(4)...

कर्त्ता-कर्मादि भिन्न षट्कारक परे...मैं हूँ अभिन्न षट्कारक रूप...
तेरा-मेरा भेद-भाव से परे...मैं हूँ भेद-विज्ञान स्वरूप...

ध्यान-ध्याता व ध्येय से परे...मैं हूँ शुद्ध ज्ञान स्वरूप...
अहंकार-ममकार से रहित...मैं हूँ वीतरागी स्वरूप...(5)...

अभिमान-स्वाभिमान-सोऽहं से परे...मैं हूँ 'अहं' स्वरूप...
नाम-रूप भौतिक परिचय परे...मैं हूँ सर्वज्ञ स्वरूप...

एक-अनेक व अस्ति-नास्ति...मैं हूँ ज्ञाता-ज्ञेय रूप...
वाच्य-वाचक विकल्प परे...मैं हूँ अनिर्वचनीय रूप...(6)...

आकाश-काल सीमा से परे...मैं हूँ अनंत-अव्यय रूप...
निमित्त-उपादान-कार्य-कारण...मैं ही मेरा स्वरूप...

लौकिक विधान व संविधान...नीति-नियम परे मेरा रूप...
नास्तिक दार्शनिक भौतिक विज्ञानी...कल्पना परे मेरा रूप...(7)...

मैं ही मेरे द्वारा अनुभवगम्य...अतः मैं हूँ गूढ़-रहस्यपूर्ण...
चिच्चमत्कारमय ज्ञायक स्वरूप...'कनकनन्दी' का शुद्ध स्व-स्वरूप...(8)...

सीपुर, दिनांक 15.08.2016, रात्रि 1.52

आत्म सम्बोधन व आत्म विकास हेतु

स्व-स्मरण से लेकर स्व-परिणमन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे...., सायोनारा...., मोक्ष पद मिलता है....)

जिया रे! तू स्व-स्मरण/(सुमिरन) करऽऽ
स्व-सुमिरन से स्व को जानोऽऽ स्व-अनुप्रेक्षा करोऽऽ (ध्रुवपद)

इसी से तेरा होगा आत्म विश्लेषणऽऽ जिससे होगा स्व-गुण-दोष परिज्ञानऽऽ
गुण विकास व दोष विनाश सेऽऽ होगा तेरा आत्म-उन्नयनऽऽ
आत्म क्रम विकास करऽऽ
पाओगे परम आत्म विकासऽऽ जिया रे...(1)...

तू तो सच्चिदानंदमय परमब्रह्मऽऽ राग द्वेष मोहादि तेरे दुर्गुणऽऽ
स्वगुणों के सुमिरन (के) द्वाराऽऽ दुर्गुणों का करो विश्लेषणऽऽ
करो दुर्गुण परिहरणऽऽ जिया रे...(2)...

दुर्गुण त्याग हेतु करो स्वाध्यायऽऽ आगम अनुभव द्वाराऽऽ
समता-शांति निस्पृहता द्वाराऽऽ करो दोषों का निवारणऽऽ
जिससे होंगे गुण उद्घाटनऽऽ जिया रे...(3)...

इसी हेतु ही करो तप-त्याग-ध्यानऽऽ यम-नियम व अनुशासनऽऽ
संयम-धैर्य व क्षमादि पालनऽऽ अध्यापन-प्रवचन-लेखनऽऽ
करो स्व का शुद्धिकरणऽऽ जिया रे...(4)...

लेन्स के माध्यम से यथा सूर्य रश्मिऽऽ होती है एकेन्द्रिकरणऽऽ
अग्नि उत्पन्न होती तथाहि तुझमेंऽऽ होंगे स्व-गुणों का जागरणऽऽ
जिससे बनोगे भगवान्ऽऽ जिया रे...(5)...

बीज से यथा वृक्ष दूध से यथाघृतऽऽ तथाहि आत्मा से परमात्माऽऽ
इसी हेतु ही तुझे करना पुरुषार्थऽऽ अन्य सभी तेरे (होंगे) सहायकऽऽ
लक्ष्यानुसार ही दृढ़चित्तऽऽ जिया रे...(6)...

अन्यथा सभी साधन व साधनाऽऽ न देंगे सही परिणामऽऽ
तेरा परिणाम ही परिणाम देगाऽऽ परिणाम ही करता परिणमनऽऽ
'कनक' स्व में करो परिणमनऽऽ जिया रे...(7)...

सीपुर, दिनांक 12.08.2016, रात्रि 9.10

(यह कविता ''आपके अवचेतन मन की शक्ति के आगे'' सी. जेम्स जेनसन से भी प्रभावित है।)

महान् भावना ही मैं भाऊँ : गुण-गुणी की निन्दादि न करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू क्षुद्र भावना त्यागऽऽऽ
महान् भावना ही सर्वदा/(सर्वथा) करोऽऽऽ कामना फल की त्यागोऽऽऽ...(ध्रुव)

महान् भावना यदि अभी न फल देऽऽऽ तथापि भावना महान् (ही) करोऽऽऽ
क्षुद्र भावना का फल अभी प्राप्त होऽऽऽ तथापि क्षुद्र भावना न करोऽऽऽ
क्षुद्र भावना का फल न महान्ऽऽऽ
महान् भावना का फल ही महान्ऽऽऽ जिया...(1)...

आत्मा को परमात्मा बनाने की भावनाऽऽऽ सबसे महान्तम भावनाऽऽऽ
इसी हेतु चाहिए पावन-उदारऽऽऽ सरल-सहज शुचि भावनाऽऽऽ
सनम्र सत्यग्राही/(गुणग्राही) भावनाऽऽऽ जिया...(2)...

परनिन्दा अपमान अहित त्यागकरऽऽऽ कर सभी के हित चिन्तनऽऽऽ
पर दुर्गुण त्यागो-सुगुण गहोऽऽऽ पर सुकृत में हो अनुमोदनऽऽऽ
नवकोटि से करो उत्तम कामऽऽऽ
पर सुकृत में न करो विघ्न उपन्न/(चिन्तन-कथन)ऽऽऽ जिया...(3)...

ज्ञानी-गुणी व सेवादानीऽऽऽ परोपकारी त्यागी साधु सज्जनऽऽऽ
निस्पृह हितोपदेशी ज्ञानदानी केऽऽऽ करो आदर सत्कार सम्मानऽऽऽ
उसी से होगा विकास महान्ऽऽऽ
इनकी निन्दा से आत्म पतनऽऽऽ जिया...(4)...

अन्य से ईर्ष्या-घृणा व निन्दा सेऽऽऽ बंधता है महान् पापकर्मऽऽऽ
ज्ञानी-गुणी-सज्जन-निर्दोष सेऽऽऽ कभी न करो नवकोटि से कुकर्मऽऽऽ
इसी से बंधे अतिघोर पापकर्मऽऽऽ
अवर्णवाद से बंधे घाती कर्मऽऽऽ जिया...(5)...

अधिकतर मानव करते कुभावनाऽऽऽ गुण-गुणी में भी करते कुभावनाऽऽऽ
स्वयं तो अज्ञानी मोही कुभावी स्वार्थीऽऽऽ होते हैं ईर्ष्या द्वेष घृणा/(कामी) सम्पन्नऽऽऽ
तथापि गुण-गुणी में करते दोषा रोपणऽऽऽ
इनका न करो तू अनुकरणऽऽऽ जिया...(6)...

महान्तम ही भावना सदा करोऽऽऽ यथायोग्य नवकोटि से भी पालोऽऽऽ
संतुष्टि निस्पृहता शांति गहोऽऽऽ आत्मविश्वास धैर्य से परिपालोऽऽऽ
'कनक' महान् लक्ष्य पालो/(पा-लो)ऽऽऽ जिया...(7)...

सीपुर, दिनांक 22.08.2016, रात्रि 9.04

(अधिकतर लोग स्वयं दुर्गुणी होते हुए भी गुण व गुणी की निन्दादि करते है, उससे पीड़ित होकर व क्षु. सुवीक्षमती के कारण यह कविता बनी।)

जिया रे! हर जीव में साम्यधर...

(श्रमण के त्याग होते हैं समस्त सांसारिक गृहस्थ संबंध)

-आचार्य कनकनन्दी

(बहुचालीय प्रेरक गीत : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., प्रथम तुला वन्दितो (मराठी)....., कुहू-कुहू बोले....., गजानना श्री गणराया (मराठी)....., सायोनारा.....)

जिया रे! तू सर्वत्र साम्य धरऽऽऽ
हर जीव प्रति समता धरऽऽऽ राग द्वेष मोह (क्षोभ) न करऽऽऽ...(ध्रुव)...
बंधुजन से न कर रागऽऽऽ शत्रु से भी न कर द्वेषऽऽऽ
किसी जीव प्रति मोह न करऽऽऽ क्षोभ/(अक्षमा) न किसी से करऽऽऽ
आत्मवत् सर्वजीव (में) भाव करऽऽऽ जिया...(1)...
सर्वजीव में मैत्री भावनाऽऽऽ गुणी जीव में हो प्रमोद भावनाऽऽऽ
दुःखी जीव में हो करुणा भावनाऽऽऽ विपरीत जीव में साम्य भावनाऽऽऽ
हो सभी में शुद्धात्म भावनाऽऽऽ
सव्वे सुद्धा हु सुद्धणयाऽऽऽ जिया...(2)...
बंधुजन से राग भाव सेऽऽऽ होता अवश्य कर्मबंधऽऽऽ
राग के कारण द्वेष भी होगाऽऽऽ अतः मोह क्षोभ उत्पन्नऽऽऽ
इन (सभी) भावों से कर्मबंधनऽऽऽ
स्वतंत्र विकास न संभवऽऽऽ जिया...(3)...
राग-द्वेष व मोह के कारणऽऽऽ होता आत्म प्रदेश में क्षोभ/(कम्पन्न)ऽऽऽ
जिससे होता कर्म आस्रवऽऽऽ आस्रव से होता कर्मबंधऽऽऽ
बंध से (होता) विकास प्रतिबंधऽऽऽ जिया...(4)...
इसी से स्वतंत्रता (का) विनाश होताऽऽऽ होता आनंद का हननऽऽऽ
ज्ञान/(ध्यान) का भी न होता है विकासऽऽऽ शुद्धता का भी होता हननऽऽऽ
न मिले शुद्ध-बुद्ध-आनंदऽऽऽ जिया...(5)...
समय शक्ति का भी होता अपव्ययऽऽऽ तन मन आत्म शक्ति क्षीणऽऽऽ

आकर्षण विकर्षण द्वन्द्व होतेऽऽऽ अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षाऽऽऽ
होते वाद-विवाद संक्लेशऽऽऽ जिया...(6)...
आगम से जाना विज्ञान में पढ़ाऽऽऽ पढ़ा इतिहास व पुराणों मेंऽऽऽ
अनुभव कर रहा हूँ दीर्घकाल सेऽऽऽ सुदृढ़ पारदर्शी भावों सेऽऽऽ
'कनक' (अतः) समता धरे सभी से/(में)ऽऽऽ जिया...(7)...
सीपुर, दिनांक 23.08.2016, रात्रि 1.55 से 2.50

संदर्भ-

कथमपि तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादि ममत्वं-करोति तदा तपोधन एव न भवति। (प्रवचनसार टीका)

जब किसी तरह से तप ग्रहण करते हुए अपने संबंधी आदि से ममता भाव करे, तब कोई तपस्वी ही नहीं हो सकता। कहा भी है-

जो सकलणयररज्जं पुव्वं चइऊण कुणई यममत्तिं।
सो णवरि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो।। (प्रवचनसार क्षेपक)

जो पहले सर्व नगर व राज्य छोड़ के फिर ममता करे, वह मात्र भेषधारी है, संयम की अपेक्षा से रहित है अर्थात् संयमी नहीं है।

(यह कविता नितिन जैन सीपुर के कारण बनी, वे बोले साधुओं को पूर्व गृहस्थ संबंधी राग करना, चर्चा करना, संबंध रखना आदि मोह के कारण है, चारित्र में दोषकारक है। नितिन जैन बोले मैं तो अपने गृहस्थ पुत्र से भी मोह नहीं करता, इससे प्रभावित होकर यह कविता सृजित हुई।)

आगम व अनुभव से मुझे क्यों विश्वास है सर्वज्ञ है?

(मुझमें भी सर्वज्ञता है ऐसा मुझे क्यों विश्वास है?)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)

हर जीव में है अनंत ज्ञान ऐसा मैं आगम में पढ़ा हूँ।
वैसा ही मेरे अनुभव से भी उसे यथार्थ से पाता हूँ।। (1)

आगम में जो वर्णन मिलते हैं द्रव्य-तत्त्व और पदार्थ।
उसके स्वरूप परिज्ञान से विश्वास हो जाते हैं सर्वज्ञ।। (2)

सर्वज्ञ बिना ऐसा सूक्ष्म-व्यापक स्वरूप कोई न जान पाता।
अणु से लेकर लोक-अलोक का वर्णन कोई न कर पाता।। (3)

अनेकांतात्मक वस्तु-व्यवस्था व उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप।
असर्वज्ञ न जाना पाता है त्रैकालवर्ती परम सत्य स्वरूप।। (4)

अमूर्तिक व अनंत गुण-पर्याय व अनंत विस्तार आकाश।
तेईस वर्गणाएँ व जीवों के कर्म का भौतिकमय स्वरूप।। (5)

भव्य जीव ही आध्यात्मिक विकास से बनते हैं भगवान्।
आध्यात्मिक विकास स्वरूप चौदह प्रकार के गुणस्थान।। (6)

जन्म-मरण व सुख-दुःख व, संसार भ्रमण व मुक्ति के कारण।
सर्वज्ञ ही जान पाते हैं संपूर्ण अनंत असर्वज्ञ को न होता ज्ञान।। (7)

इन सबके परिज्ञान से व मेरे स्व-अनुभव के द्वारा।
स्वप्न-शकुन व अंगस्फुरण से जानता हूँ अंतः प्रज्ञा द्वारा।। (8)

भौतिक-विज्ञान अंतरिक्ष ज्ञान मनोविज्ञान व स्वास्थ्य-विज्ञान।
न्याय-राजनीति-शिक्षा-संविधान मुझे अनुभव में होता पूर्वज्ञान।। (9)

जो अभी शोध हो रहा विज्ञान में व घटित होते देश-विदेशों में।
उनमें से बहुत अनुभव करके ग्रंथों में लिखा हूँ अति पूर्व से।। (10)

जो अभी शोध नहीं हुआ है उनमें से भी अनेक मैं लिखा हूँ।
अनुभव से उससे भी अधिक जानता हूँ आध्यात्मिक शक्ति से।। (11)

इन सभी से मुझे अनुभव होता है सर्वज्ञ भगवान् भी होते हैं।
मुझमें भी है सर्वज्ञतापना-शक्ति-रूप में व सुप्त रूप में।। (12)

इन सब विषयों को (विशेष) परिज्ञान हेतु मेरे द्विशताधिक ग्रंथ पढ़ो।
सर्वज्ञता को पूर्ण प्राप्त करने हेतु 'कनकनन्दी' सदा ही प्रयत्न करे।। (13)

सीपुर, दिनांक 17.08.2016, प्रातः 7.45

मेरे ग्रंथ लिखने के कारण एवं परिणाम : गुरु आज्ञा पालन-ज्ञानार्जन-ज्ञानदान

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)

सुनो-सुनो हे! शिष्य-भक्त-जन, ग्रंथ लिखने के मेरे कारण।
गुरु आज्ञा पालन ज्ञानार्जन/(ज्ञानदान), स्व-पर-विश्व मंगल कारण।।

सूरी विमलसागर भरतसागर, गुरु कुंथुसागर सन्मतिसागर।
इनकी आज्ञा व आदेश पालन हेतु, भक्त शिष्यों के आग्रह हेतु।। (1)

ग्रंथ लिख रहा हूँ क्षुल्लक अवस्था से, उन्नीस सौ उनासी (1979) अकलुज से।
गुरुओं के आदेश मिले दश वर्ष तक, उन्नीस सौ उनब्बे (1989) बड़ौत तक।।

(आ.) विमलसागर जी ने आदेश दिया, पत्र के द्वारा भी निर्देश दिया।
क्षुल्लक सन्मति का आग्रह रहा, आवश्यकता के कारण ये सब हुआ।। (2)

ग्रंथ लिखने से भी होता ज्ञानार्जन, शोध-बोध-स्वास्थ्य मनन-चिंतन।
एकाग्रचित्त व स्मरण विश्लेषण, भाषा-व्याकरण व शुद्धता ज्ञान।।

समन्वय समीक्षा जोड़ रूप ज्ञान, निन्दा-अपमान/(वाद-विवाद) रहित प्रमाण।
कल्पना अनुभव सहित युगानुकूल, स्व-पर-विश्व कल्याण कर।। (3)

धर्म-दर्शन-विज्ञान समन्वय, अनेकान्तमय आगम प्रमाण।
प्राचीन अर्वाचीन प्राच्य-पाश्चात्य, समालोचना सहित लिखूँ ग्रंथ।।

ज्ञानदान भी होता इसी से, देश-विदेशों में प्रचार इसी से।
साधु संघ हेतु होता ग्रंथ प्रदान, ग्रंथ प्रकाशकों को ग्रंथ प्रदान।। (4)

देश-विदेशों के जैन-अजैन, ग्रंथ प्रकाशन हेतु करते ज्ञानदान।
वे भी करते इसी से पुण्यार्जन, स्वर्ग-मोक्षदायी है ज्ञानदान।।

ज्ञानदान निरवद्य महादान, गृहस्थ से लेकर (करते) सर्वज्ञ भगवान्।
ज्ञानदाता गुरु होते है महान्, अन्य दानी से भी होते महान्।। (5)

ज्ञान से होता सत्य-असत्य ज्ञान, हिताहित करणीय-अकरणीय।
ज्ञानविहीन अन्य दान भी न होते, अज्ञान तम में कुछ न दिखते।।

प्रवचन स्वाध्याय कक्षा से, अधिक लिख पाता हूँ ग्रंथों में।
गंभीर गहन गूढ सूक्ष्म विषय, ग्रंथ में लिखना होता विशेष।। (6)

ग्रंथों में लिखता हूँ सार्वभौम, सत्य-तथ्यपूर्ण वैश्विकमय।
निश्चित श्रोता हेतु नहीं लिखता, स्व-पर-विश्वहित हेतु लिखता।।

अतः लिखना व्यापक भी होता, अध्यापन प्रवचन से (भी) अधिक होता।
व्यापक चिरस्थाई होता, अतः 'कनकनन्दी' ग्रंथ लिखता।। (7)

सीपुर, दिनांक 10.08.2016, रात्रि 8.55

संदर्भ-

चतुर्थं शास्त्रदानं च सर्वशास्त्रेषु कथ्यते।
येन जानाति मूर्खोऽपि त्रैलोक्यं सचराचरम्।। (325) स.कौ.

चौथा शास्त्रदान, सब शास्त्रों में कहा गया है, जिसके द्वारा अज्ञानी पुरुष भी चराचर सहित तीनों लोकों को जान लेता है।

लिखित्वा लेखयित्वा वा साधुभ्यो दीयते श्रुतम्।
व्याख्यायतेऽथवा स्वेन शास्त्रदानं तदुच्यते।। (326)

स्वयं लिखकर अथवा दूसरों से लिखवाकर साधुओं के लिए जो शास्त्र दिया जाता है अथवा स्वयं उसका व्याख्यान किया जाता है वह शास्त्रदान कहलाता है।

अन्यस्मिन् भवे जीवो बिभर्ति सकलं श्रुतम्।
मोक्ष-सौख्यमवाप्नोति शास्त्रदानफलान्नरः।। (328)

शास्त्रदान के फल से जीव, अन्य भव में समस्त श्रुत को धारण करता है अर्थात् श्रुतकेवली होता है और शास्त्रदान के फल से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है।

न दद्याद्यशसेदानं न भयान्नोपकारिणे।
न नृत्यगीत शीलेभ्यो हासकेभ्यश्च धार्मिकः।। (329)

धर्मात्मा पुरुषों को यश के लिए दान नहीं देना चाहिए, न भय से देना चाहिए, न प्रत्युपकार करने वाले के लिए, न नृत्य गान आदि करने वालों के लिए और न हँसाने वाले विदूषक आदि के लिए देना चाहिए अर्थात् ये दान के अपात्र हैं।

यथाविधि यथादेशं यथाद्रव्यं यथागमम्।
यथापात्रं यथाकालं दान देयं गृहाश्रमैः।। (330)

गृहस्थों को विधि के अनुसार, देश के अनुसार, अपनी शक्ति के अनुसार, आगम के अनुसार, पात्र के अनुसार, तथा समय-ऋतु के अनुसार दान देना चाहिए।

मेरे आत्मानुसंधान

मुझे क्यों ज्ञात होता है बिना पढ़ा-बिना सुना ज्ञान/विषय

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की.....)

सुख आश्चर्य होता है मुझको, तथा विश्वास होता है सर्वज्ञता पर।
स्वप्न शकुन अंगस्फूरणों से/(के), हजारों के फलों को भी जानकर।। (1)

छाया पुरुष दर्शन व सामुद्रिक लक्षण, भावात्मक शकुन पूर्वानुमान ज्ञान।
अंतः प्रज्ञा से प्राप्त ज्ञान तथाहि कथन, सत्य हुए हैं हजारों व कुछ किया लेखन।। (2)

इससे मुझे मिले शिक्षा तथाहि ज्ञान, आत्मा में अनंतज्ञान आत्म साक्ष्य प्रमाण।
इसके कारणों का मैं कर रहा हूँ अनुसंधान, जिससे उन कारकों का कर सकूँ संवर्द्धन।। (3)

पूर्वभव के सुसंस्कार व बाल्यकाल से भावना, स्व-पर-विश्वहित व सत्य ज्ञान की भावना।
पक्षपात रहित व सनम्र सत्यग्राही भावना, उदार पावन व गुणग्राही भावना।। (4)

एकांत मौन व शांत रहना ध्यान, विविध साहित्यों का अध्ययन-मनन।
विविध गुरुओं से ज्ञान प्राप्त करना, शोध-बोध-प्रयोग स्वयं करना।। (5)

ढोंग-पाखण्ड आडंबरों से रहित, भेड़ भेड़ियाचाल से भी रहित।
ईर्ष्या द्वेष घृणा तृष्णादि से रहित, सरल-सहज पावनता सहित।। (6)

गुरुओं का आदर विनय बहुमान करना, बालकाल से निस्पृह भाव से ज्ञानदान देना।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रहित, ज्ञान-ध्यान व तपस्यादि करना।। (7)

परनिन्दा अपमान वैर-विरोध शून्य, आकर्षण-विकर्षण-द्वन्द्व रहित।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश रहित, प्राणायाम योगासन भ्रमण सहित।। (8)

शुद्ध सात्विक शाकाहार दुग्धाहार, फलाहार सूखा मेवा व घी आहार।
प्रदूषण रहित शांत स्वच्छ स्थान निवास, संकीर्ण पंथ-मत-वाद-विवाद शून्य।। (9)

विज्ञान गणित अलौकिक गणितज्ञान, कर्म सिद्धांत मनोविज्ञान का ज्ञान।
गुणस्थान मार्गणा विश्व विज्ञान का ज्ञान, अंतः प्रज्ञा सह जोड़ रूप अनुभव ज्ञान।। (10)

आत्मानुसंधान युक्त परिकल्पना सहित, करता हूँ मनन-चिन्तन व स्मरण।
और भी अनेक ज्ञात अज्ञात कारकों से, होता है 'कनक' को नये-नये ज्ञान।। (11)

सीपुर, दिनांक 31.08.2016, मध्याह्न 3.08

स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुदेव की महानता

कु. खुशी जैन सुपुत्री राजेश कुमार जैन

(चाल : हम तेरे बिन अब रह.....)

कनक गुरु आत्मविहारी देते हैं सबको आतम ज्ञान2
मुझे ज्ञान दो2 'मैं' का मुझे ज्ञान दो
बच्चों को तेरे शिष्यों को साधुओं की ज्ञान दो हो...

गुरुवर तो है ज्ञानी-ध्यानी प्रशंसा करते है गुरुवर
मेरे दुःखों को जला दो 'मैं' का ज्ञान करा दो
चाहे दूर तू है पर मन से भी है, 'खुशी' शरणागत आयी
मुझे ज्ञान दो...

कनक गुरु संयमधारी, सारी विद्याओं के है ज्ञानी
अब सीपुर क्षेत्र करने पावन, चले है 'कनक गुरुवर'
'नितिन भैया' श्रीफल चढ़ाते हैं, चातुर्मास कराने आजीवन
मुझे ज्ञान दो...

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 10.08.2016, दोपहर 3.00 बजे

''जय बोलो स्वाध्याय तपस्वी आचार्य कनकनन्दी गुरुवदेव की जय''

मिलती है मंजिल यूँ ही : लक्ष्य

उद्‌गार : ब्र. अजय संघस्थ, आचार्य श्री कनकनन्दी जी

(तर्ज : सजती है महफिल.....(कुदरत).....)

होऽऽऽ मिलती है मंजिल यूँ ही...जवाँ रंग चढ़ने दोऽऽऽ
मिलती है मंजिल यूँ ही, जवाँ रंग चढ़ने दो/(खिलने दो)
''कनक'' गुरु की सोहबत से, नया जोश बढ़ने दो
मिलती है मंजिल...।।टेक।।

यौवन/(जवानी) को पाके हमने, उपयोग सही ना जाना
विरीत दिशा में चलकर, जीवन व्यर्थ गवाँ डाला
यौवन को....., उपयोग.....
विपरीत दिशा में.....
पाकर गुरु-क्रांति-ज्योत, जीवन में उजाला बढ़ने दो
मिलती है मंजिल यूँ ही.....।।1।।

स्व-क्रांति सूत्रपात करके, संयम संग जीना होगा
गुरुवत जीवन जीकर, जन्म धन्य करना होगा
स्व-क्रांति सूत्रपात..... संयम संग.....
गुरुवत जीवन.....जन्म धन्य करना होगा
'अजय' लक्ष्य जल्दी पा लो,
वैराग्य रंग चढ़ने दो.....

मिलती है मंजिल यूँ ही, गुरु संग मिलने दो
'कनक' गुरु की सन्निधी से, जीवन-पुष्प खिलने दो
मिलती है मंजिल यूँ ही, जवाँ रंग चढ़ने दो......

सीपुर अतिशय क्षेत्र चातुर्मास, दिनांक 11.08.2016, रात्रि 2.15

''मैं'' का ध्येय व लक्ष्य
(अर्जी श्री गुरु चरणों में)

शब्द-सुमन निवेदक-ब्र. अजय, संघस्थ आ. श्री कनकनन्दी जी

(चाल : आये हो मेरी जिन्दगी.....)

आये हो मम जीवन में, 'मैं' का ध्येय जताने...
आये हो मम जीवन में, 'मैं' का लक्ष्य बताने...
उपकार अनंत तेरे, 'मैं' से मुझे मिलाने...
आये हो मम...(ध्रुवपद)

भाव-विशुद्धि पाया, साधना में 'मैं' को पाया...
व्रत-नियम दृढ़ करके, चिंतन में 'मैं' ही पाया...

पायी धरम की कमाई, 'मैं' को आत्मसात करके...
उपकार अनंत तेरे...(1)

'मैं' में ही सब छिपा है, रत्नत्रयों का गान...
दश धर्म शुभ भावों संग, अनुप्रेक्षा स्व-बहुमान...
धारणा अभिपुष्ट करके, लक्ष्य सहज बनाने...2
उपकार अनंत...(2)

सत्य समता शांति पाने, चाही शरण है तेरी...
अपना बना लो गुरुवर, पावन शरण तिहारी...
निश्रा में श्री-गुरु के, अर्जी 'अजय' लगाई...2
उपकार अनंत तेरे, 'मैं' से मुझे मिलाने...
आये हो मम जीवन में, 'मैं' का ध्येय जताने...
आये हो मम जीवन में, 'मैं' का लक्ष्य बताने...
उपकार अनंत...(3)

सीपुर, दिनांक 14.08.2016, रात्रि 9.45

परम स्वतंत्रता की चाह में

(गुरुवर श्री को निवेदन)

निवेदक-ब्र. अजय, संघस्थ श्री गुरुदेव

(चाल : मेरे नैना सावन भादो.....)

कृपावंत गुरुवर, श्री कनकनन्दी शीघ्र दो भगवती दीक्षा...2
मेरे गुरुवर, कृपालु भगवन्, दो चरण-सेवा की भिक्षा...
शीघ्र दो भगवती दीक्षा...(ध्रुव)

बरसों इंतजार किया...समय भी गुजरता गया...
दीर्घ प्रतीक्षा किया...समय भी व्यतीत हुआ...
ऊहापोह में बीते दिन-रैना...आये ना दिल को चैना...2
बलिहारी गुरु ऐसी आपकी...क्यों दी 'मैं' आदि की शिक्षा?!
समझी/(जानी) मैंने धर्म की शिक्षा...

अब ना करो देर...बनाओ ना गैर...
बरसा दो सिर पर ''श्री'' की वर्षा...2
कृपावंत गुरुवर...(1)

जीवन का ठिकाना नहीं...कहाँ ठिठक जाये जिन्दगी...2
जाने कब मिलेगा...ये जैन बाना...
जाने कब मिले श्री गुरु करुणा...
जाने कब मिले उनकी शरणा...
बुला लो 'अजय' को गुरु जल्दी-जल्दी...
लग जाये 'बिनौली' की हल्दी...2
मुहूर्त निकालो हे करुणाकर...
शीघ्र ''मुक्ति-रानी'' को है वरणा...
पाने ''अनंत-चतुष्टय'' का सपना/(गहना)...
कृपावंत गुरुवर...श्री कनकनन्दी...शीघ्र दो भगवती दीक्षा...2
मेरे गुरुवर...कृपालु भगवन्...दो चरण-सेवा की भिक्षा...2

सीपुर, दिनांक 15.08.2016, रात्रि 10.19

समता-शान्ति व निस्पृहता हेतु मेरी साधना

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

समता-शांति-निस्पृहता को...मैं सतत बढ़ाता जा रहा हूँ...
जब तक अनंत स्वरूप न बनूँ...तब तक बढ़ाता जाऊँगा...

किसी भी परिस्थिति-दबाव-प्रलोभन से...इसे न विकृत करता हूँ...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि हेतु भी...इसे कभी भी न छोड़ता हूँ...(1)...

शत्रु-मित्र या भक्त-शिष्य हेतु भी...इसे कभी न करता हूँ...
क्रोध मान माया लोभ आदि के कारण...इसे कभी न दूर करता हूँ...

हास्य रति अरति भय शोकादि कारण...विवर्जित इसे न करता हूँ...
कोई क्या कहे या करे इस हेतु...हानि इसे न पहुँचाता हूँ...(2)...

अंधानुकरण या प्रपञ्च हेतु...हीन इसे न कभी करता हूँ...
धर्म प्रभावना या ग्रंथ प्रकाशन हेतु...त्याग इसे न करता हूँ...

व्यापार राजनीति अभिनय सम...कोई भाव-व्यवहार न करता हूँ...
ये सभी तो संसार वर्द्धक काम...मैं तो संसार से पार हो रहा हूँ/(होऊँगा)...(3)...

मेरी इस भावना को मैं और भी...दृढ़तम बनाता जा रहा हूँ...
मेरा अनुभव है इससे मुझे लाभ...हुआ है और भी होता जा रहा...

आध्यात्मिक लाभ इससे होते...ज्ञान-ध्यान व आनंद बढ़ते...
संतुष्टि तृप्ति एकाग्रता बढ़ती...कार्य क्षमता/(चिन्तन क्षमता) में तीव्रता आती...(4)...

भक्त-शिष्यगण भी स्व-भावना से...सेवा-व्यवस्था सभी करते हैं...
आहार औषधि ज्ञान उपकरण दान सह...वसतिका दान भी करते हैं...

व्यवस्था हेतु चिन्ता न करता...याचना-दबाव न करता हूँ...
संकल्प-विकल्प-संक्लेश न करता...अपेक्षा-उपेक्षा न प्रतीक्षा करता...(5)...

ज्ञान-ध्यान-तपोरक्त साधु का...स्वरूप भी सही पालन होता...
आगम अनुकूल साधना होती...आत्मविशुद्धि युक्त विकास होता...

कोई निन्दा न करे किन्तु गौरव करते...स्व-प्रेरणा से सहयोग देते...
स्वयं पुण्य कमाते आत्म विकास करते...स्व-अनुभव से अन्य को प्रेरणा देते...(6)...

उन्हें मैं आशीर्वाद सह-प्रेरणा देता...अच्छा भाव-व्यवहार हेतु शिक्षा देता...
आत्म विकास हेतु मार्ग बताता...हर जीव ऐसा बने भावना भाता...

समता-शांति-निस्पृहता के अनुकूल...मैं हर कार्य भी करता हूँ...
इसके प्रतिकूल नहीं करता...ऐसी प्रतिज्ञा 'कनक' करता हूँ...(7)...

सीपुर, दिनांक 03.09.2016, रात्रि 2.54 से 3.56

(नितिन (सीपुर), मणिभद्र, दीपेश, मयंक (चीतरी) व दि.-श्वे. जैन आदि भक्त-शिष्य मेरी समता-शांति-निस्पृहता से प्रभावित होकर सभी प्रकार सेवा-व्यवस्था आदि स्वेच्छा से कर रहे हैं, इससे प्रेरित होकर भी यह कविता बनी।)

(यह कविता ''मन के चमत्कार'' डॉ. जोसेफ मर्फी से भी प्रभावित है।)

संदर्भ-

परमध्यान के कारण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।। (56) (द्र.स.)
मा चेष्ठत मा जल्पत मा चिन्तयत किमपि येन भवति स्थिरः।
आत्मा आत्मानि रतः इदं एव परं भवति ध्यानं।।

Do not act, do not talk, do not think, so that the soul may be attached to and fixed in itself. This only is excellent meditation.

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारी आत्मा अपनी आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वही परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा पत्थर डालने पर जल अस्थिर होता है और छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अंतर हो। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के संकल्प-विकल्प, चिंतन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन्न/चंचलता/क्षोभ हो जाता है। इसलिये श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप से स्थिर होना चाहिए। अतः आचार्यश्री ने कहा है कि-

'मा चिठ्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज-शुद्ध-आत्मा के अनुभव को रोकने वाला शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ अंतरंग-बहिरंग रूप-वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ मत करो।

'जेण होइ थिरो' जिन तीनों योगों के रोकने से स्थिर होता है। वह कौन? 'अप्पा' आत्मा। कैसा होकर स्थिर होता है? 'अप्पम्मि' स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान आचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन, तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव परं हवे ज्झाणं' यही जो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परम ध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानंद सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्म-स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटता रूप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध आत्मानुभव से उत्पन्न सुख रूपी अमृत जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान की भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्ध नय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा लेना चाहिए ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परम ब्रह्म स्वरूप है, वही परम विष्णु रूप है, वही परम शिव रूप है, वही परम बुद्ध स्वरूप है, वही परम जिन स्वरूप है, वही परम निज आत्मोपलब्धि रूप सिद्ध स्वरूप है, वही निरंजन स्वरूप है, वही शुद्धात्म दर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्म दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्ध पारिणामिक भाव रूप है, वही ध्यान भावना रूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है, वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परम तत्त्वज्ञान है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्म स्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य आनंद है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति हैं, वही परम समाधि है, वही परम आनंद है, वही नित्य आनंद है, वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वह ही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य रूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट् आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है, वही वीतराग सामायिक है, वह ही परम शरण रूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है वही परमात्मा भावना रूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृत स्वरूप परम धर्म ध्यान है, वही शुक्ल ध्यान है, वही राग आदि विकल्प रहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही

परम वीतरागता है, वही परम समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आह्लाद एक सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्म तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

संदर्भ-

इंसान की व्यक्तिपरक आस्था की बदौलत अंधे विश्वास और आस्था से परिणाम मिलते हैं। **(जोसेफ मर्फी)**

मेरे एक मनोवैज्ञानिक मित्र ने मुझे बताया कि उसके एक फेफड़े में संक्रमण था। एक्सरे और विश्लेषण में पता चला कि टी.बी. है। रात को सोने जाने से पहले वह शांति से यह दृढ़ कथन कहता था, ''मेरे फेफड़ों की हर कोशिका, ऊत्तक और मांसपेशी को अब निरोग, निर्मल और आदर्श बनाया जा रहा है। मेरे पूरे शरीर को अब स्वास्थ्य और निरोगता में लौटाया जा रहा है।'' ये उसके सटीक शब्द नहीं हैं, लेकिन ये उसकी कही बात का सार बताते है। लगभग एक महीने में ही पूर्ण उपचार हो गया। बाद में हुए एक्सरे ने दिखाया कि फेफड़े बिलकुल सही हो गए थे।

मैं उसके उपाय को जानना चाहता था, इसलिए मैंने उससे पूछा कि वह सोने से पहले शब्द क्यों दोहराता था। उसका जवाब यह है : अवचेतन मन की गत्यात्मक क्रिया आपके सोते समय नींद के दौरान भी जारी रहती है, इसलिए जब आप तंद्रा में लुढ़के, तो अपने अवचेतन मन को करने के लिए कोई अच्छा काम सौंप दें। यह बहुत समझदारी भरा जवाब था। ध्यान रहे, उसने निरोगता और स्वास्थ्य का सुझाव तो दिया था, लेकिन इस दौरान उसने अपनी समस्या का नाम लेकर जिक्र नहीं किया था।

मैं प्रबलता से सुझाव देता हूँ कि आप अपनी बीमारियों के बारे में बातचीत करना या उन्हें नाम से पुकारना बंद कर दें। आपका ध्यान और बीमारी का डर ही वह एकमात्र पोषक तत्त्व है, जिससे उन्हें जीवन मिलता है। ऊपर बताये गये मनोवैज्ञानिक की तरह आप एक अच्छे मानसिक सर्जन बन सकते हैं; फिर आपकी मुश्किलें उसी तरह हट जायेंगी, जिस तरह सूखी शाखाएँ पेड़ से अलग हो जाती हैं।

यदि आप लगातार अपने दर्द और लक्षणों का नाम ले रहे हैं, तो आपके मन के नियम द्वारा इन कल्पनाओं में साकार होने की प्रवृत्ति होती है, ''जिसका मुझे भारी डर था।''

अवचेतन मन पर छाप छोड़ने की एक तकनीक यह है : यह मूलतः आपके अवचेतन मन को प्रेरित करने में निहित है कि यह चेतन मन द्वारा किए गए आपके आग्रह को स्वीकार कर ले। यह ''हस्तांतरण'' तंद्रा जैसी अवस्था में सबसे अच्छी तरह हासिल होता है। जान ले कि आपके सबसे गहरे मन में असीम प्रज्ञा और असीम शक्ति है। बस शांति से इस बारे में सोचे कि आप क्या चाहते हैं; इस पल के बाद इसे पूर्ण फलित होकर अपने जीवन में आता देखें। उस छोटी लड़की की तरह बने, जिसे बहुत बुरी खाँसी थी और जिसका गला बंद था। उसने दृढ़ता से बार-बार घोषणा की, ''यह अब दूर हो रही है; यह अब दूर हो रही है।'' खाँसी लगभग एक घंटे में सचमुच दूर हो गई। पूर्ण सादगी और मासूमियत से इस तकनीक का इस्तेमाल करें।

अवचेतन मन का इस्तेमाल करते समय आप कोई विरोधी अनुमान नहीं लगाते हैं; आप किसी इच्छाशक्ति का उपयोग नहीं करते हैं। आप इच्छाशक्ति का नहीं, कल्पना का उपयोग करते हैं। आप अंत और स्वतंत्रता की अवस्था की कल्पना करते हैं। आप पायेंगे कि आपकी बुद्धि बीच में रोड़े डालने की कोशिश कर रही है, लेकिन आप बच्चों जैसी, चमत्कार करने वाली एक सरल आस्था कायम रखने में जुटे रहे। रोग या समस्या के बिना अपनी तस्वीर देखें। अपनी मनचाही स्वतंत्रता की अवस्था में पहुँचने पर जो भावनाएँ उत्पन्न होंगी, उनकी कल्पना करें। इस प्रक्रिया से सारी लेटलतीफी को हटा दें। सरल तरीका हमेशा सबसे अच्छा होता है।

याद रखें कि आपके शरीर में एक जैविक व्यवस्था है, जो स्वैच्छिक (सेरीब्रो-स्पाइनल नर्वस सिस्टम) और स्वचालित नर्वस सिस्टम की तुलना में चेतन और अवचेतन मन के पारस्परिक प्रभाव को दर्शाती है। ये दोनों तंत्र अलग-अलग या मिलकर काम कर सकते हैं। वेगस नर्व शरीर के दोनों तंत्रों को जोड़ती है। जब आप कोशिकीय तंत्र और आँख, कान, हृदय, लिवर, मूत्राशय आदि अंगों के तंत्र का अध्ययन करते हैं, तो आपको पता चलता है कि उनमें कोशिकाओं का समूह शामिल होता है, जिनमें एक सामूहिक प्रज्ञा होती है, जिसके द्वारा वे मिलकर काम करती है और मास्टर माइंड (चेतन मन) के सुझाव पर आदेश लेने तथा निगमनात्मक तरीके से उन पर अमल करने में समर्थ होती हैं। इसीलिए फेफड़ों की सामूहिक प्रज्ञा ने इस अध्याय में पहले बताये गये मनोवैज्ञानिक के सृजनात्मक, सकारात्मक सुझावों पर प्रतिक्रिया की।

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	आत्मनिष्ठ हेतु मेरी भावना-साधना	2
2.	पर निरपेक्ष सत्य (सत्य) को पाता चलूँ	3
3.	मेरा परम स्वतंत्रता स्वरूप	4
4.	स्व-स्मरण से लेकर स्व-परिणमन	5
5.	महान् भावना ही मैं भाऊँ : गुण गुणी की निन्दादि न करूँ	6
6.	जिया रे! हर जीव में साम्यधर	8
7.	आगम व अनुभव से मुझे क्यों विश्वास है सर्वज्ञ है?	9
8.	मेरे ग्रंथ लिखने के कारण एवं परिणाम	11
9.	मुझे क्यों ज्ञात होता है बिना पढ़ा-बिना सुना ज्ञान/विषय	13
10.	स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुदेव की महानता	14
11.	मिलती है मंजिल यूँ ही : लक्ष्य	14
12.	''मैं'' का ध्येय व लक्ष्य	15
13.	परम स्वतंत्रता की चाह में	16
14.	समता-शांति व निस्पृहता हेतु मेरी साधना	17
	नैतिक < धार्मिक < आध्यात्मिक	
1.	मेरे उपकारी श्रेय मुझमें ही निहित	25
2.	चाहे मेरा मन-पावन गुण-गण	25
3.	नैतिकजन (भद्रजन) के भाव-व्यवहार-फल-I	26
4.	पुण्यशाली (धार्मिकजन) के भाव-व्यवहार-फल-II	31
5.	आध्यात्मिक के भाव-व्यवहार-फल-III	38
6.	मेरा शुद्ध विश्वरूप स्मरण	44
7.	मेरे संख्यात-असंख्यात-अनंत भेद	45

8.	मैं हूँ, मेरा ईश्वर	48
9.	मेरे श्रेष्ठतम लक्ष्य-भावना-प्रयत्न	58
10.	आत्म विकास से करूँ पूर्ण विकास	59
11.	नैतिकता (भद्रता) < पुण्य क्रिया (धार्मिकता) < आध्यात्मिकतामय मैं बनूँ	60
12.	अनुभव आता है धीरे-धीरे	62
13.	स्वाध्याय से तन-मन-आत्मा स्वस्थ्य	69
14.	विपरीततायें व विकृतियाँ	70
15.	स्व-प्रति बनी भ्रान्त धारणा को निरसन करूँ	73
16.	वैश्विक-सार्वभौम कार्य-कारण संबंध	78
17.	सही निर्णय लेने योग्य कारक	79
18.	अभ्यास-अनुभव से काम होते हैं विचार बिना	80
19.	लक्ष्यानुसार मिलते.....परिणाम	88
20.	अन्य को परास्त किये बिना विजयी बनूँ	89
21.	आत्मविश्वास-आत्म-सम्मान से करूँ आत्म-विकास	96
22.	स्व-स्मरण से लेकर स्व-परिणमन	103
23.	गति या परिणति के नियम	106
24.	मेरी अनुशासन पद्धतियाँ व उपलब्धियाँ	107
25.	कठोर भी गुरुवचन से भव्य जीव विकसित होता	110
26.	मेरी संशोधित परिवर्द्धित निःस्वार्थपूर्ण प्रति प्रश्नमय शिक्षा पद्धति	111

आत्म-संबोधन

नैतिक < धार्मिक < आध्यात्मिक गीताञ्जली

मेरे उपकारी श्रेय मुझमें ही निहित

-आचार्य कनकनन्दी

आये हो मम जीवन में, उपकारी श्रेय बनकर/(के)।
सत्य-समता-शांति, रत्नत्रय बनकर।। (ध्रुव) आये...

सत्य है सार्वभौम, जीव-अजीव में व्याप्त।
मेरा परम सत्य, मेरा ही शुद्ध-रूप।।

समता है मेरा रूप, मोह-क्षोभ से रहित।
सच्चिदानंद रूप, दशधा धर्म सहित।। आये...(1)

शांति अंतिम लक्ष्य, सर्व संक्लेश रिक्त।
शुद्ध-बुद्ध-आनंद, आह्लाद सुख युक्त।।

रत्नत्रय स्वरूप, (आत्म) विश्वास ज्ञान चारित्र।
स्व-स्वरूप का विश्वास, उक्त गुणों से युक्त।। आये...(2)

ये ही मेरा लक्ष्य (है), साधना साध्य युक्त।
ज्ञान-ज्ञेय व ध्येय, शोध-बोध व प्राप्य।।

इसी हेतु ही सम्पूर्ण, तप-त्याग यम-नियम।
मूल-उत्तर गुण, स्वाध्याय अध्यापन।। आये...(3)

मुझमें ही सब निहित, मेरा स्वरूप समस्त।
अतः 'कनकनन्दी', स्वयं में ही दत्त चित्त।। आये...(4)

सीपुर, दिनांक 11.08.2016, प्रातः 7.58

चाहे मेरा मन-पावन गुण-गण

-आचार्य कनकनन्दी

(राग : सुन साहिबा सुन.....)

चाहे मेरा मन-पावन गुण-गण
होऽऽऽ निष्कलंक निर्विकारी, आत्मिक गुण।। (ध्रु.)

सत्य-समता-शांति, समन्वित गुण। आत्मविशुद्धि युक्त, वैराग्य सम्पन्न।।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश से भिन्न। आकर्षण-विकर्षण-विद्वेष शून्य।।
होऽऽऽ ख्याति-पूजा-लाभ, प्रसिद्धि शून्य।। (1)

ज्ञानानंद परिपूर्ण, शुद्ध-बुद्ध गण। राग द्वेष मोह काम क्रोधादि से शून्य।।
ईर्ष्या-घृणा, विद्वेष तृष्णा से शून्य। परनिन्दा-अपमान-अपकार शून्य।।
होऽऽऽ अहंकार-ममकार, दीन-हीन शून्य।। (2)

स्व-पर-विश्वहित, भावना से पूर्ण। सरल-सहज-निर्मल, भावना से पूर्ण।।
मैत्री प्रमोद कारुण्य, माध्यस्थ से पूर्ण। उदार सहिष्णु क्षामादि, दश धर्म पूर्ण।।
होऽऽऽ ज्ञान वैराग्य निस्पृहता, अनुभव पूर्ण।। (3)

आकुलता-व्याकुलता, द्वन्द्व से शून्य। सत्य-शिव-सुन्दर, आनन्द घन पूर्ण।।
पर से शून्य, स्वयं (से) परिपूर्ण। अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा से शून्य।।
होऽऽऽ स्वावलम्बी स्वानुशासी, 'कनक' रूप में पूर्ण।। (4)

सीपुर, दिनांक 23.08.2016, मध्याह्न 2.58

I-धार्मिक होने के प्रथम सोपान

नैतिकजन (भद्रजन) के भाव-व्यवहार-फल -I

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : वैष्णव जन तो तेणे कहिये.....)

नैतिक जन तो तेने कहिये, जो अनैतिक कार्य न करे हैं।
अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार न करे, आतंकवाद परे है...ऽऽऽ।। (ध्रुव)
शोषण-मिलावट-ठगी न करे, चोरी-बलात्कार परे हैं।
पर-निन्दा-अपमान वैरत्व न करे, कलह-द्वन्द्व से परे है।। (1)
हत्या-डकैती-अपहरण न करे, मद्य-माँस सेवन परे है।
परपीड़ा से दूर रहे पर-उपकार-सेवा-सहयोग करे हैं।। (2)
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शून्य भी भद्र परिणामी होते हैं।
साधु-सज्जन गुण व गुणी के आदर-सत्कार भी करते हैं।। (3)
संतोष-सदाचारी-मृदुगुणधारी, सरल-सहज वे होते हैं।
सत्य-असत्य के ज्ञान बिना भी, बालकवत् भद्र होते हैं।। (4)

जातिमत-पंथ-भाषा-राष्ट्र हेतु, वैर-विरोध न करते हैं।
धार्मिक-राजनीति-कालागोरा हेतु, पक्ष-पात-द्वन्द्व न करते हैं।। (5)
धनी-गरीब व ऊँच-नीच हेतु, कलह-विसंवाद न करते हैं।
हरिण-गाय सम भद्र परिणामी होते, मरकर स्वर्ग भी जाते हैं।। (6)
भोग-भूमिज यथा मिथ्यादृष्टि मानव व, पशु-पक्षी भद्र होते हैं।
वैसा जो व्यवहार करते मानव उन्हें, मैं नैतिकमय मानता हूँ।। (7)
भद्र मिथ्यादृष्टि भव्य जीव ही सम्यग्दृष्टि पुण्यशाली बनते हैं।
क्रमशः आध्यात्मिक साधना करके, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय बनते हैं।। (8)
नैतिक बिना न कोई होता है धार्मिक, धार्मिक बिना न आध्यात्मिक।
आध्यात्मिक बिना न मोक्ष मिलता अतः, 'कनक' बना है आध्यात्मिक।। (9)

सीपुर, दिनांक 29.08.2016, अपराह्न 2.32

संदर्भ-

ऋजुत्वमीषदारम्भपरिग्रहतया सह।
स्वभावमार्दवं चैव गुरुपूजनशीलता।।(40)
अल्पसंक्लेशता दानं विरतिः प्राणिघाततः।
आयुषो मानुषस्येति भवन्त्यास्रवहेतवः।।(41)

अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह के साथ परिणामों में सरलता रखना, स्वभाव से कोमल होना, गुरुपूजन का स्वभाव होना, अल्प संक्लेश का होना, दान देना और प्राणिघात से दूर रहना ये मनुष्यायु के आस्रव के कारण हैं।

(तत्त्वार्थसार-चतुर्थाधिकार पृ.120)

स्वभाव मार्दवं च। (18)

Natural humble disposition is also the cause of human-age-karma.

स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है।

उपदेश की अपेक्षा के बिना होने वाली कोमलता स्वाभाविक कहलाती है। मृदु का भाव या कर्म मार्दव है, स्वभाव से होने वाला अर्थात् परोपदेश के बिना होने वाला मार्दव स्वाभाविक मृदुता है। जो जीव स्वाभाविक मृदुता से सहित होते हैं वे भी मनुष्य आयु का आस्रव करते हैं। 17वें सूत्र में मनुष्य आयु के आस्रव का कारण

बताने के बाद भी इस सूत्र में अलग से मनुष्य आयु के आस्रव का वर्णन इसलिये किया गया कि स्वाभाविक सरलता से मनुष्य आयु का आस्रव जैसे होता है वैसे ही देव आयु का आस्रव का भी कारण बनता है।

सब आयुओं का आस्रव

निःशील व्रतत्वं च सर्वेषाम। (19)

Vowlessness and sub vowlessness with slight wordly activity and slight attachment, is cause of inflow of all kinds of age-karmas.

शील रहित और व्रत रहित होना सब आयुओं का आस्रव है।

सूत्र में जो 'च' शब्द है वह अधिकार प्राप्त आस्रवों के समुच्चय करने के लिए है। इससे यह अर्थ निकलता है कि अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह रूप भाव तथा शील और व्रतरहित होना सब आयुओं के आस्रव हैं।

दिग्व्रत आदि सात शील और अहिंसादि पाँच व्रतों के अभाव से भी यदि कषाय मंद है और लेश्याएँ शुभ हैं तब देव और मनुष्य आदि शुभ आयु का आस्रव होता है और जब कषाय तीव्र है और लेश्याएँ अशुभ रहती हैं तब तिर्यंच और नरक आदि अशुभ आयु का आस्रव होता है। इसलिए इस सूत्र में कहा है कि शील रहितता एवं व्रत रहितता से सम्पूर्ण आयु का आस्रव होता है।

मनुष्य आयु का आस्रव

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य। (17)

The inflow of मानुष्यायु human-age-karma is caused by slight wordly activity and by attachment to a few wordly objects of by slight attachment.

अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह वाले का भाव मनुष्यायु का आस्रव है।

नरक आयु के आस्रव के कारणों से विपरीत भाव मनुष्य आस्रव के कारण हैं। नरक आयु के आस्रवों के कारण बहु आरम्भादि का वर्णन कर दिया है। उससे विपरीत अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रहत्व, संक्षेप में मनुष्य आयु के आस्रव के कारण हैं। विस्तार से मिथ्यादर्शन सहित बुद्धि, विनीत स्वभाव, प्रकृतिभद्रता, मार्दव-आर्जव परिणाम, अच्छे आचरणों में सुख मानना, रेत की रेखा के समान क्रोधादि, सरल व्यवहार, अल्पारम्भ, अल्प परिग्रह, संतोष में रति, हिंसा से विरक्ति, दुष्ट कार्यों से

निवृत्ति, स्वागत तत्परता, कम बोलना, प्रकृति मधुरता, सबके साथ उपकार-बुद्धि रखना, औदासीन्यवृत्ति, ईर्षारहित परिणाम, अल्प संक्लेशता, गुरु, देवता, अतिथि की पूजा-सत्कार में रूचि, दानशीलता, कापोत, पीत लेश्या के परिणाम, मरण समय में धर्मध्यान परिणति आदि लक्षण वाले परिणाम मनुष्यायु के आस्रव के कारण हैं।

स्वभावमार्दवोपेता आर्जवाङ्कितविग्रहाः।
सन्तोषिणः सदाचारा नित्यं मन्दकषायिणः।। (92)
शुद्धाशया विनीताश्च जिनेन्द्रगुरुधर्मिणाम्।
इत्याद्यन्यामलाचारैर्मण्डिता येऽत्र जन्तवः।। (93)
ते लभन्तेऽन्यपाकेन चार्यखण्डे शुभाश्रिते।
नृगति सत्कुलोपेता राज्यादिश्रीसुखान्विताम्।। (94)

जो स्वभाव से मृदुतायुक्त हैं, जिनका शरीर सरलता से संयुक्त है, संतोषी हैं, सदाचारी हैं, सदा जिनकी कषाय मन्द रहती है, शुभ अभिप्राय रखते हैं, विनीत हैं, जिनेन्द्र देव, निर्ग्रंथ गुरु और जिनधर्म का विनय करते हैं, इन तथा ऐसे ही अन्य निर्मल आचरणों से जो जीव यहाँ पर विभूषित होते हैं, वे पुण्य के परिपाक से शुभ के आश्रयभूत आर्यखण्ड में सत्कुल से युक्त, राज्यादि लक्ष्मी के सुख से भरी हुई मनुष्यगति को प्राप्त करते हैं। (श्री वीरवर्धमानचरिते)

सायाणं च पयारे, तेसट्ठी-संजुदाणि ति-सयाणि।
रस-भेदा तेसट्ठी, देंति फुडं भोयणंग-दुमा।। (352)

भोजनांग जाति के कल्पवृक्ष सोलह प्रकार का आहार, सोलह प्रकार के व्यंजन, चौदह प्रकार के सूप (दाल आदि) चउवन के दुगुने (108) प्रकार के खाद्य पदार्थ, तीन सौ तिरेसठ प्रकार के खाद्य पदार्थ एवं तिरेसठ प्रकार के रस भेद पृथक्-पृथक् दिया करते हैं।

तिरिया भोगखिदीए, जुगला-जुगला हवंति वर-वण्णा।
सरला मंदकसाया, णाणाविह-जादि-संजुता।। (392)

(तिलोयपण्णती, पृ. 118)

भोगभूमि में उत्तम वर्ण-विशिष्ट, सरल, मंद-कषायी और नाना प्रकार की जातियों वाले तिर्यञ्च जीव युगल-युगल रूप से होते हैं।

गो, केसरि, करि, मयरा, सूवर, सारंग, रोज्झ, महिस, वया।

वाणर, गवय, तरच्छा, वग्घ, सिगालच्छ, भल्ला य।। (393)

कुक्कुड-कोइल-कीरा, पारावद-रायहंस-कारंडा।

बक-कोक-कोंच-किंजक-पहुदीओ होंति अण्णे वि।। (394)

(भोगभूमि में) गाय, सिंह, हाथी, मगर, सूकर, सारंग, रोझ (ऋश्य), भैंस, वृक (भेड़िया), बंदर, गवय, तेंदुआ, व्याघ्र, श्रृगाल, रीछ, भालू, मुर्गा, कोयल, तोता, कबूतर, राजहंस, कारंड, बगुला, कोक (चकवा), क्रौंच एवं किञ्जक तथा और भी तिर्यंच होते हैं।

जह मणुवाणं भोगा, तह तिरियाणं हवंति एदाणं।

णिय-णिय-जोग्गत्तेणं, फल-कंद-तणंकुरादीणि।। (395)

वहाँ जिस प्रकार मनुष्यों के भोग होते हैं, उसी प्रकार इन तिर्यंचों के भी अपनी-अपनी योग्यतानुसार फल, कंद, तृण और अंकुरादि के भोग होते हैं।

वग्घादी-भूमिचरा, वायस-पहुदी य खेयरा तिरिया।

मंसाहारेण विणा, भुजंते सुरतरुण महुर-फलं।। (396)

वहाँ व्याघ्रादि भूमिचर और काक आदि नभचर, तिर्यंच, माँसाहार के बिना कल्पवृक्षों के मधुर फल भोगते हैं।

हरिणादि-तणचरा तह, भोगमहीए तणाणि दिव्वाणि।

भुंजंति जुगल-जुगला, उदय-दिणेस-प्पहा सव्वे।। (397)

भोगभूमि में उदयकालीन सूर्य के सदृश प्रभा वाले समस्त हरिणादिक तृण-जीवी पशुओं के युगल दिव्य तृणों का भोजन करते हैं।

उपरोक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले स्त्री-पुरुष कल्पवृक्ष से प्राप्त सुमधुर, सुगंध युक्त भोजन एवं पानी का सेवन करते हैं। उत्तम भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य तीन दिन के बाद चौथे दिन भोजन करते हैं, मध्यम भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले जीव दो दिन के बाद भोजन करते हैं और जघन्य भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले जीव एक दिन बाद अर्थात् दूसरे दिन में भोजन करते हैं। इनको भोजन का प्रमाण भी आँवला, बेर आदि के बराबर है। भोगभूमि में जो उत्पन्न होते हैं वे पूर्वजन्म के संस्कार को लेकर जन्म लेते हैं जिसके कारण उनके भाव भी भद्र, सरल एवं सात्विक रहते हैं। इसके कारण तो उनका भोजन भी सात्विक होता है, इतना ही नहीं वहाँ जन्म लेने वाले पशु भी पूर्व के अच्छे संस्कार के कारण भद्र,

सरल परिणाम के होते हैं जिसके कारण उनका भोजन भी सात्विक होता है। कालक्रम से युग परिवर्तन होता है। तब यहाँ जन्म लेने वाले कुछ पूर्व कुसंस्कार को लेकर जन्म लेते हैं जिसके कारण उनके परिणाम भी दूषित होते जाते, वे पूर्व संस्कार से प्रेरित होकर एवं उस समय के वातावरण से प्रभावित होकर अशुभ भाव से भावित हो जाते हैं, जिसके कारण वे क्रूर होकर माँस का भक्षण करने लगते हैं और मनुष्यों को भी कष्ट देना प्रारंभ करने लगते हैं। तिल्लोयपण्णात्ति में कहा है कि-

वग्धादि-तिरिय-जीवा, काल-वसा क्रूर-भावमावण्णा।
तब्भयदो भोग-णरा, सव्वे अच्चउला जादा।। (448)

(तिलोयपण्णति, पृ. 131)

उस समय कालवश व्याघ्रादिक तिर्यंच जीवों के क्रूर-परिणाम होने से सर्व भोगभूमिज मनुष्य उनके भय से अत्यंत व्याकुल हो गये थे।

खेमंकर-णाम मणू भीदाणं देदि दिव्व-उवदेसं।
कालस्स विकारादो, एदे कूरत्तणं पत्ता।। (449)
ता एण्हिं विस्सासं, पापाणं मा करेज्ज कइया वि।
तासेज्ज कलुस-वयणा, इय भणिदे णिब्भया जादा।। (450)

तब क्षेमंकर नामक मनु उन भयभीत प्राणियों को दिव्य उपदेश देते हैं कि काल में विकार से ये तिर्यंच जीव क्रूरता को प्राप्त हुए हैं, इसलिये अब इन पापियों का विश्वास कदापि मत करो, ये विकृत मुख प्राणी तुम्हें त्रास दे सकते हैं। उनके ऐसा कहने पर वे भोगभूमिज निर्भयता को प्राप्त हुए हैं।

उस कुल का स्वर्गवास होने पर आठ हजार से भाजित पल्य-प्रमाण काल के अनंतर क्षेमंधर नामक चतुर्थ मनु उत्पन्न हुआ। उसके शरीर की ऊँचाई सात सौ पचहत्तर धनुष और आयु सौ के वर्ग (10000) से भाजित पल्य प्रमाण थी। उसका वर्ण स्वर्ण सदृश था, उसकी देवी 'विमला' नाम से विख्यात थी।

II-धार्मिक होने के द्वितीय सोपान

पुण्यशाली (धार्मिकजन) के भाव-व्यवहार-फल-II

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : वैष्णव जन तो....., आत्मशक्ति.....)

धार्मिकजन/(पुण्यशाली) तो तेने कहिए, जे सम्यग्दृष्टि जीव होते हैं।

द्रव्य-तत्त्व व पदार्थ को माने, आत्मा-परमात्मा को भी माने हैं।। (स्थायी)...

सच्चे देव-शास्त्र की श्रद्धा करते, अष्ट अंग युक्त होते हैं।
अष्टमद सप्तभय रहित, नैतिक गुणों से भी युक्त हैं।।

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय मनुष्य तिर्यञ्च, देव-नारकी होते धार्मिक हैं।
देव नारकी तो सम्यक्त्वी तक ही होते, यहाँ तक ही पुण्यशाली हैं।।
तिर्यञ्च पञ्चम गुणस्थान तक होते, यहाँ तक ही होते पुण्यशाली हैं। (1)

मनुष्य ही (केवल) सम्यग्दृष्टि से लेकर, होते हैं अरिहंत सिद्ध तक।
नैतिक से धार्मिक आध्यात्मिक तक, होते हैं परमात्मा तक।।

श्रेणी आरोहण से होता शुद्धोपयोग, प्रारंभ जो आध्यात्मिकमय।
उससे पहिले व चतुर्थ गुणस्थान से, होता मुख्यतः शुभोपयोगमय।। (2)

इस अवस्था के बारे में यहाँ पर, कर रहा हूँ मैं कुछ वर्णन।
सम्यग्दृष्टि होते चतुर्थ गुणस्थान वाले, जिसका ऊपर हुआ वर्णन।।

पञ्चम गुणस्थानवर्ती होते हैं श्रावक, जिसके ग्यारह प्रभेद हैं।
शुभोपयोगी साधु होते परिग्रह त्यागी, जिसके द्वय प्रभेद हैं।। (3)

अणुव्रतधारी होते हैं श्रावक, महाव्रतधारी होते श्रमण हैं।
दोनों का लक्ष्य आत्मा से परमात्मा बनना, किन्तु गृहाश्रमी श्रावक हैं।।

इसीलिए श्रावक कम पुण्यशाली, श्रमण होते अधिक पुण्यवन्त हैं।
साधु बने बिना श्रावक नहीं, बन पाता श्रेष्ठ आध्यात्मिक है।। (4)

श्रमण ही आध्यात्मिक साधना से, बनते हैं अरिहन्त सिद्ध रे!
श्रावक भी श्रमण बनकर, बनते हैं अरिहन्त सिद्ध रे!

इसके अतिरिक्त (केवल) सत्ता-संपत्ति वाले, न होते पुण्यवन्त/(धार्मिक) हैं।
मिथ्यादृष्टि के बाह्य धार्मिक क्रिया भी, नहीं है सातिशय पुण्य रे! (5)

जैन धर्म की गुणस्थान-व्यवस्था, अतुलनीय अद्वितीय है।
आत्मा को परमात्मा बनाने हेतु, 'कनक' को लगे श्रेय है।। (6)

सीपुर, दिनांक 29.08.2016, रात्रि 9.30

संदर्भ-

व्रत ग्रहणीयः अव्रत त्याजनीय

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकं।

छायातपस्ययोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।। (3)

Observance of vowl leadl to birth in the heasvens, therefore their observance is proper. The vowless life dragr one to a birth in the hells, which is painful. Therefore vowlessness should be avoided, when two persons are waiting for the arrival of another person, but one of them waits in the heat of the sun and the other in the shade, great is the difference between their conditions; precisely the same difference is to be found between the condition of him who leads a life reaguleated by the vows and of him whose life is not so reaguleated.

शिष्य प्रश्न करता है कि-हे भगवन्! यदि सुद्रव्यादि की समग्रता से यह आत्मा शुद्ध आत्मा की उपलब्धि करता है तब हिंसादि विरति रूप व्रत-अनर्थ हो जायेंगे। आचार्य उत्तर देते हैं कि-हे वत्स! तुम्हारी जो शंका है कि व्रतादि अनर्थ हो जायेंगे वह नहीं है। उन व्रतादि से अशुभ कर्म का निरोध होता है, प्राचीन कर्म का एक देश क्षय अर्थात् निर्जरा होती है, पुण्य कर्म का संचय होता है इस दृष्टि से व्रतादि सफल है। शुभ कर्म के कारण स्वरूप व्रतादि जो पुण्य संचय होता है-उससे स्वर्ग आदि पद की प्राप्ति होती है, इसे ही आचार्यश्री आगे तीसरे नं. श्लोक में स्पष्ट कर रहे हैं-

व्रतादि से विषय राग जनित सुख को देने वाला देव का अभ्युदय व्रतादि से प्राप्त होना श्रेष्ठ है जो कि सर्व जन प्रसिद्ध है। अव्रतादि से नरक-दुःख प्राप्त करना श्रेष्ठ नहीं है। खेद की बात यह है कि हिंसादि रूप अव्रत से अशुभ से दुःख स्वरूप नरक प्राप्त करना कैसे श्रेष्ठ हो सकता है? जब व्रत से देव एवं अव्रत से नरक की समानता की आशंका होती है तब आचार्य दोनों के महान् अंतर को स्पष्टीकरण करने के लिए छाया एवं आतप का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। कोई दो व्यक्ति स्वकार्य वशात् नगर से यात्रा के लिए निकले। तीसरे मित्र के लिए दोनों को प्रतीक्षा करनी पड़ी। एक छाया में प्रतीक्षा करता है तो एक कड़ी धूप में प्रतीक्षा करता है। दोनों तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि उनका मित्र नहीं आ जाता है। प्रतीक्षा की अपेक्षा दोनों की प्रतीक्षा समान होते हुए भी छाया में प्रतीक्षा करने वाला सुख में रहता है, धूप में रहने

वाला कष्ट में रहता है। इसी प्रकार जो व्रतादि करता है वह जब तक सुद्रव्यादि को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त नहीं करता है तब तक वह स्वर्गादि सुख में रहता है, अन्य जो व्रतादि पालन नहीं करता है वह नरकादि दुःख में रहता है।

समीक्षा-शुद्ध निश्चयनय से आत्मा शुभ-अशुभ तथा पुण्य-पाप से रहित सच्चिदानंद स्वरूप है। परन्तु जब तक वह शुद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं करता है तब तक उसे शुभ के माध्यम से पुण्य का उपार्जन करना चाहिए। सम्यग्दृष्टि का पुण्य परम्परा से स्वर्ग एवं मोक्ष के लिए कारण बनता है। सम्यग्दृष्टि श्रावक तथा मुनि व्रत शुभोपयोग सहित, पुण्य उत्पादक तथा परम्परा से मोक्ष साधक है। आचार्य कुन्दकुन्द देव ने कहा भी है-

णाणादिरयण तियमिह सज्झं तं साधयंति जमणियमा।
जत्थ जमा सरसदिया णियमा णियतप्प परिणामः।। (2) (मू.आ.)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप साध्य हैं। यम और नियम इस रत्नत्रय रूप साध्य को सिद्ध करने वाले हैं। साधन के बिना साध्य सिद्धि नहीं होती है इसलिये महाव्रतादि यम सामायिकादि नियम के बिना रत्नत्रय की सिद्धि नहीं हो सकती है। इसलिए मोक्ष के लिए व्रतादि अनिवार्य हैं। जो महाव्रतादि आजीवन पालन किया जाता है उसे यम कहते हैं। सामायिकादि अल्पकालावधि होने से यम कहलाते हैं।

मूलगुणेसु विसुद्ध वंदित्ता सव्व संजदे सिरसा।
इह परलोग हिदत्ये मूलगुणे कित्तइस्सामि।। (1)

''इह'' शब्द प्रत्यक्ष को सूचित करने वाला है। ''पर'' शब्द इन्द्रियातीत जन्म को कहने वाला है और ''लोक'' शब्द देवों के ऐश्वर्य आदि का वाचक है। 'हित' शब्द से सुख, ऐश्वर्य पूजा सत्कार और चित्त की निवृत्ति फल आदि कहे जाते हैं, और 'अर्थ' शब्द से प्रयोजन अथवा फल विवक्षित है। इस प्रकार से इहलोक और परलोक के लिए अथवा इन उभय लोकों में सुख ऐश्वर्य आदि रूप ही है जिनका, वे इहलोक के लिए हितार्थ कहे जाते हैं। अर्थात् ये मूल गुण इहलोक और परलोक में सुख ऐश्वर्य आदि के निमित्त हैं। इन मूलगुणों का आचरण करते हुए जीव इस लोक में पूजा, सर्वजन से मान्यता गुरुता (बड़प्पन) और सभी जीवों से मैत्री भाव आदि को प्राप्त करते हैं तथा इन मूलगुणों को धारण करते हुए परलोक में देवों के ऐश्वर्य, तीर्थंकर पद, चक्रवर्ती, बलदेव, आदि के पद और सभी जनों में मनोज्ञता, प्रियता आदि प्राप्त

करते हैं। ऐसे मूलगुण जो कि सभी उत्तर गुणों के आधारपने को प्राप्त आचरण विशेष है।

ऐसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।

चरिया परेति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं।। (254) (प्रवचनसार)

गाथार्थ–यह प्रशस्तभूत चर्या श्रमणों की होती है और गृहस्थों के तो मुख्य होती है ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। उसी से गृहस्थ परम सौख्य को प्राप्त होता है।

तपोधन दूसरे साधुओं की वैयावृत्ति करते हुए अपने शरीर के द्वारा जो कुछ भी वैयावृत्य करते हैं वह पापारंभ व हिंसा से रहित होती है तथा वचनों के द्वारा धर्मोपदेश करते हैं। शेष औषधि अन्नपान आदि की सेवा गृहस्थों के आधीन है, इसलिये वैयावृत्य गृहस्थों का मुख्य धर्म है किन्तु साधुओं का गौण है। दूसरा कारण यह है कि विकार रहित चैतन्य के चमत्कार की भावना के विरोधी तथा इन्द्रिय विषय और कषायों के निमित्त से पैदा होने वाले आर्त्त और रौद्रध्यान में परिणमने वाले गृहस्थों को आत्माधीन निश्चय धर्म के पालने का अवकाश नहीं है। यदि वे गृहस्थ वैयावृत्यादि रूप शुभोपयोग धर्म वर्तन करे तो खोटे ध्यान से बचते है तथा साधुओं की संगति से गृहस्थों को तथा व्यवहार मोक्ष मार्ग के उपदेश का लाभ हो जाता है, इससे ही गृहस्थ परम्परा से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वंसंग परिचित्ता।

देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाणं।। (2)

दया से विशुद्ध जो धर्म सर्वसंग से रहित प्रवज्या अर्थात् मुनि दीक्षा, मोक्ष से रहित देव भव्य जीवों के लिए उदय कर रहा है।

वर वय तवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं।

छायातविट्ठायाणं पडिवातंताण गुरु भेद।। (25) (अट्ठपाहूडं)

जब तक रत्नत्रय की पूर्णता नहीं होती है तब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जब तक मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है तब तक व्रत तपों का पालन करके स्वर्ग प्राप्त करना श्रेष्ठ है। परन्तु अव्रती होकर नरक तिर्यंचगति संबंधी दुःख प्राप्त करना श्रेष्ठ नहीं है। तब तक व्रत तपों का पालन करके स्वर्ग प्राप्त करना श्रेष्ठ है। जिस प्रकार एक पथिक को पीछे आने वाले अपने साथी की राह देखने के लिए अत्यंत उष्ण धूप में बैठने की अपेक्षा शीतल वृक्ष की छाया में बैठना श्रेयस्कर है। ऐसा कौन

मूर्ख होगा जो शीतल छाया को छोड़कर अत्यंत उष्ण धूप में बैठेगा।

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।

त्यजेत्यान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः।। (84) (समाधिशतक)

हिंसा पापादि अव्रतों को छोड़कर अहिंसादि व्रत में अत्यंत निष्ठावान होना चाहिए। उस व्रत के माध्यम से जब परमात्मा पद की प्राप्ति हो जायेगी तब उन व्रतों को भी त्यागना चाहिए। जिस प्रकार मंजिल के ऊपर चढ़ने के लिए सीढ़ी की आवश्यकता होती है, बिना सीढ़ी के चढ़ा नहीं जा सकता है, परन्तु मंजिल के ऊपर जाने के बाद सीढ़ी स्वयंमेव छूट जाती है, अथवा सीढ़ी की शेष सीमा के बाद उस सीढ़ी को त्यागकर मंजिल में प्रवेश करते हैं। जैसे हम आगे बढ़ जाते है पीछे का रास्ता छूट जाता है उसी प्रकार हम गुण श्रेणी आरूढ़ होकर बढ़ जाते हैं तो पीछे की गुण श्रेणी छूट जाती है। जैसे मुनि होने पर श्रावक के व्रत छूट जाते हैं, उसी प्रकार परमात्म पद को प्राप्त करते हैं तो व्रतादि के विकल्प नहीं रहते हैं, जैसे दूध से दही, घी बनता है। जब तक घी नहीं बनता है तब तक दूध दही का संरक्षण करना आवश्यक है परन्तु घी बनने के बाद दूधादि अवस्था नहीं रहती है। जैसे फूल से फल बनता है फल होने पर स्वयं फूल गिर जाता है।

अशुभाच्छुभायातः शुद्धः स्यादयमागमात्।

खेरप्राप्त संध्यस्य तमसो न समुद्रगमः।। (122)

विधूत तमसो रागस्तपः श्रुत निबन्धनम्।

संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।। (123)

विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः।

रविद्रागमागच्छन् पातालतलमृच्छति।। (124) (आत्मानुशासन)

यह आराधक भव्य जीव आगम ज्ञान के प्रभाव से अशुभ स्वरूप असंयम अवस्था से शुभ संयम अवस्था को प्राप्त हुआ समस्त कर्म मल से रहित होकर शुद्ध हो जाता है जिस प्रकार सूर्य जब तक प्रभात काल को प्राप्त नहीं होता है तब तक वह अंधकार को नष्ट नहीं कर सकता है।

अज्ञान असंयम रूप अंधकार को नष्ट करने वाले प्राणी के जो तप और शास्त्र विषय का जो अनुराग होता है वह सूर्य की प्रभात कालीन राग (लालिमा) के समान अभ्युदय के लिए होता है।

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोड़कर और अंधकार को आगे करके जब (अस्त) राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है अर्थात् अस्त हो जाता है। उसी प्रकार जो प्राणी वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले ज्ञान रूप प्रकाश को त्यागकर अज्ञान, असंयम को स्वीकार करता हुआ संसार-शरीर-भोग संबंधी राग को प्राप्त होता है तब वह पाताल तल अर्थात् आत्मपतन रूप अवस्था को प्राप्त होता हुआ नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है। आत्मा रूपी सूर्य अनादिकाल से अज्ञान, असंयम, मोहरूपी अंधकार से व्याप्त संसार रूपी रात्रि में संचरण कर रहा है। उसको चिज्ज्योति स्वरूप मुक्ति लोक प्राप्त करना है। उसको पहले अज्ञान असंयम रूपी अंधकार को छोड़कर देव, शास्त्र, गुरु, व्रत, नियम संबंधी राग रूपी दिग्वलय में आना ही होगा। उस समय में पूर्ण अंधकार नहीं तो पूर्ण प्रकाश भी नहीं है परन्तु उस वह आत्मा रूपी सूर्योदय के कारण है। जिस प्रकार सूर्योदय के पूर्व पूर्ण प्रकाश नहीं तथा पूर्ण अंधकार नहीं है परन्तु वह लालिमा सूर्योदय रूपी अभ्युदय का सूचक है। जब जीव देवशास्त्र-गुरु-तप-संयम को छोड़कर संसार शरीर के प्रति अनुराग करता है तब वह राग उसके पतन का ही कारण होता है। जिस प्रकार सायंकालीन राग (लालिमा) पतन का सूचक है अर्थात् प्रभात कालीन और सायंकालीन दोनों राग समान होते हुए भी प्रभात कालीन अभ्युदय के सूचक है और सायंकालीन राग पतन के सूचक है। उसी प्रकार देवशास्त्र-गुरु के प्रति और संसार शरीर भोग के प्रति राग समान होते हुए भी एक उत्थान का कारण है तो दूसरा पतन का कारण है।

णिज्जावगो य णाणं वादो झाणं चरित्तं णावा हि।
भवसागरं तु भविया तरंति तिहिसण्णिवायेण।। (100) (मूलाचार)

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान और नौका चारित्र है। इन तीनों के संयोग से ही भव्य जीव भवसागर को तिर जाते हैं।

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः।
शमयममास्तत्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः।।
नियमित मनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता।
भवति कृतिनः संसाराब्धेस्तटे निकटे सति।। (224) (आ.शा.)

इन्द्रिय विषयों से विरक्ति, परिग्रह का त्याग, कषायों का दमन राग द्वेष की शांति, यम-नियम, इन्द्रियदमन, सात तत्त्वों का विचार, मन की प्रवृत्ति पर नियंत्रण,

जिन भगवान् की भक्ति और प्राणियों पर दयाभाव ये सब भाव उस पुण्यात्मा पुरुष के होते हैं जिसके संसार समुद्र का किनारा निकट आ चुका है। अर्थात् निकट भव्य सम्यग्दृष्टि जीव उपरोक्त व्रतादि स्वरूप नौका में बैठकर संसार रूपी सागर को शीघ्र रूप से पार करता है।

III-धार्मिक होने के अंतिम तृतीय सोपान

आध्यात्मिक के भाव-व्यवहार-फल -III

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : वैष्णव जन तो....., आत्म शक्ति.....)

आध्यात्मिक जन तो तेने कहिए, जो स्वात्मा निवास करे हैं।
राग द्वेष मोह काम क्रोध त्यागकर जो समता भाव धरे हैं।। (1)

चतुर्थ गुणस्थान से अंकुर रूप से, आध्यात्मिक भाव जगे है।
क्रमशः वृद्धि हो सातिशय सप्तम गुणस्थान में वृक्ष रूप धरे है।। (2)

श्रेणी आरोहण में वृद्धि होकर, तेरहवाँ गुणस्थान में पूर्ण होवे है।
चौदहवें गुणस्थान व सिद्ध अवस्था में, पूर्ण आध्यात्मिक होवे हैं।। (3)

आध्यात्मिक है शुद्ध आत्म का स्वभाव, जो शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय है।
अनंत ज्ञानदर्शन सुख वीर्यमय, अमूर्तिक अव्याबाधमय है।। (4)

शत्रु-मित्र भाई-बंधु (से) परे, परमसमरसमय है।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि परे जो, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय है।। (5)

ख्याति-पूजा-लाभ आकर्षण-विकर्षण, परे (जो) आत्मा में ही लवलीन है।
संकल्प-विकल्प व संक्लेश शून्य, निर्विकार-निरञ्जन है।। (6)

द्रव्य-भाव नोकर्म रहित, सच्चिदानंदमय (स्व) रूप है।
जन्म-जरा-मृत्यु रहित स्वयं में ही, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है।। (7)

तन-मन व इन्द्रिय रहित, स्व-शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्यायमय है।
चैतन्य चमत्कार स्वयं में स्वयंपूर्ण, 'कनक' का निजशुद्ध स्वरूप है।। (8)

सीपुर, दिनांक 30.08.2016, मध्याह्न 3.13

संदर्भ-

आत्मस्थिरता की आवश्यकता

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।

अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45)

The not-self are suely never the self, only sorrow accures to the soul from them; the self ever remains th self; it is therefore the cause of happiness; because of this, great persanages have exerted themselves for the realigation of the self!

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिए उसमें आत्मा का आरोपण करना दुःखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे पर द्रव्य दुःखों के द्वार हैं, दुःखों के निमित्त है। उसी प्रकार आत्मा आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान नहीं है। इसलिए आत्मा से सुख है; दुःख के निमित्त उसके अविषय है। इसके लिए ही तीर्थंकरादि महात्मा आत्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

समीक्षा-आचार्यश्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दूसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को/अनात्म स्वरूप को अपनाता है वह सुख के परिवर्तन में दुःखों को गले लगाता है। इसके विपरीत जो पर संयोग को त्याग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है आलंबन लेता है वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध, स्वतंत्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय अनंत सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्गलिक द्रव्य है, जिसमें सुख का सर्वथा अभाव है। उसको स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्मबंध होता है, उससे आत्मा परतंत्र हो जाता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप में परिणमन कर लेते हैं परन्तु भेद विज्ञान तथा भेद क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर संबंध रूप बंधन कट जाता है। तब आत्मा के सुखादि गुण प्रगट हो जाते हैं। इसे ही स्वतंत्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन मोक्ष कहते हैं। कहा भी है-

पक्खीणघादिकम्मो अणंतवरवीरिओ अधिकतेजो।

जादो अणिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।। (19)

He develops knowledge and happiness after heving

exhausted the destructive karmas, being endowed with excellent infinite strength and excessive lustre and after becoming supersensuous.

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्था में पड़ा हुआ है, जब इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढ़का हुआ है, तब तक पाँच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चय आत्मानुभव के बल से कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रगट होने में पर की अपेक्षा नहीं है, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-स्वभावतः प्रत्येक जीव अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि, अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही सुप्त रूप में छिपे हुए हैं। कुंदकुंद देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण ये णियेणवच्छण्णो।
संसारसमावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं।। (67)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है।

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।। (27 गीता पृ. 76)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये है, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

सामग्री विशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्। (11)

(प्रमेयरत्नमाला पृ. 83)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये है समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते है।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।
आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवस्तथैवा।।

पृ.102

तथा संन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है-

हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है, तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः। (पतञ्जली योगदर्शन 34 पृ.174)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभकृतियों से जन्य पुण्य-पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को संपूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को नियंत्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् संपूर्ण पदार्थों को ठीक-ठाक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्यजन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम। (55) पृ. 424

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा।
एतं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मप नं. 7 पृ. 65)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से)

जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

यत्रभावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरूवर्तिनी।

यो नयत्यासु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति।। (4)

The Soul that is capable of conferring the divine status when meditated upon, how for can the heavens be from him? Can the man who is able to carry a load to a distance of two Koses feel tired when carrying it only half a Kos?

गुरूपदेशमासाद्य ध्यायमानः समाहितैः।

अनन्तशक्तिरात्मायं भुक्तिं मुक्तिं च यच्छति।। (196)

ध्यातोऽर्हसिद्धरूपेण चरमांगस्य मुक्तये।

तद्ध्यानोपात्तपुण्यस्य स एवान्यस्य भुक्तये।। (197)

पुनः विनेय अर्थात् शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा की भक्ति के बिना केवल व्रतादि से चिर भावित मोक्ष सुख नहीं मिलता है किन्तु व्रतों से संसार के सुख सिद्ध हो जाते हैं। संसार के सुख प्राप्त होने पर चिद्रूप स्वरूप आत्मा में भक्ति विशुद्ध भाव और अंतरंग अनुराग नहीं होगा और यह आत्मा में भक्ति ही मोक्ष के लिए कारण है। व्रत होते हुए और संसार के सुख सद्भाव होते हुए भी मोक्ष के लिए उत्तम साधन स्वरूप सुद्रव्यादि साध्य अभी दूर है। अतः मध्य में मिलने वाले से स्वर्गादि सुख व्रतादि के द्वारा ही साध्य है। इस प्रकार प्रश्न होने पर आचार्य उसका उत्तर देते है कि वह भी नहीं है। व्रतादि का आचरण निरर्थक नहीं होता है। उसी प्रकार आत्म भक्ति आदि जो तेरे द्वारा की जाती है वह भी असाधु अर्थात् अयोग्य नहीं है। इसे ही स्पष्ट करते हैं-

जिसे आत्मा के विषय में प्रणिधान-अर्थात् भक्ति होने पर शिव अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है वही आत्म भक्ति से भव्यों के लिए स्वर्ग क्या दूर हो सकता है! आत्मध्यान, आत्मभक्ति, आत्म अनुराग के फलस्वरूप प्राप्त पुण्य से यदि मोक्ष सुख मिल सकता है तब स्वर्ग सुख क्या नहीं मिलेगा? अर्थात् अवश्य स्वर्ग सुख उसके लिए निकट है, मिलने योग्य है। तत्त्वानुशासन में कहा भी है-

जो गुरु के उपदेश को प्राप्त करके जो आत्मध्यान को समाहित चित्त से करता है उसे आनंद शक्ति सम्पन्न यह आत्मा मुक्ति और भुक्ति को प्रदान करता है जो चरम शरीरी है जब वह स्वयं को अरिहंत-सिद्ध रूप से ध्यान करता है तब उसके पुण्य से मोक्ष मिलता है तथा अन्य अचरम शरीर को स्वर्ग सुखादि मिलता है।

उपर्युक्त विषय को दृष्टांत के द्वारा स्पष्ट कर रहे हैं। यथा-जो भारवाहक जिस भार को लेकर 2 कोश (4 मील) प्रमाण दूरी को शीघ्र पार कर लेता है वह क्या उस भार को 1/2 कोश लेने में थक जायेगा अर्थात् नहीं थकेगा। सिद्धांत है कि महाशक्ति में छोटी शक्ति निहित होती है।

समीक्षा-

होतिं सुहावसव-संवर-णिज्जरामर सुहाई विउलाई।
ज्झाण वरस्स फलाइं सुहाणुबंधीणि धम्मस्स।। (56)
जह वा घण संघात खणेण परणाहा विलिज्जति।
ज्झाणप्प वणोवहया तह कम्म घणा विलिज्जाति।। (57)

अर्थ-शंका-इस धर्म ध्यान का क्या फल है?

समाधान-अक्षपक जीवों को देव पर्याय संबंधी विपुल सुख मिलना उसका फल है और गुण श्रेणी में कर्मों की निर्जरा होना भी उसका फल है, तथा क्षपक जीवों के तो असंख्यात गुण श्रेणी रूप से कर्म प्रदेशों की निर्जरा होना और शुभ कर्मों के उत्कृष्ट अनुभाग का होना उसका फल है। अतएव जो धर्म से अनुप्रेत है वह धर्मध्यान है, यह बात सिद्ध होती है।

इस विषय में गाथाएँ-उत्कृष्ट धर्मध्यान के शुभ आस्रव संवर निर्जरा और देवों के सुख में शुभानुबंधी विपुल फल होते हैं। अथवा जैसे मेघपटल तड़ित होकर क्षण मात्र में विलीन हो जाते हैं वैसे ही ध्यान रूपी पवन से उपहत होकर कर्ममेघ भी विलीन हो जाते हैं। (ध.पु. 5पृ. 77)

अर्थ-मोह का सर्वोपशमन करना धर्मध्यान का फल है; क्योंकि कषाय सहित धर्मध्यानी के सूक्ष्म एवं सांपराय गुणस्थान के अंतिम समय में मोहनीय कर्मों की सर्वोपशमना देखी जाती है। तीन घाती कर्मों का निर्मूल विनाश करना एकत्व वितर्क अविचार ध्यान का फल है। परंतु मोहनीय का विनाश करना धर्मध्यान का फल है क्योंकि सूक्ष्म सांपराय गुणस्थान के अंतिम समय में उसका विनाश देखा जाता है। (ध.पु.पृ. 81)

अर्थ-ध्यान के प्राथमिक साधकों को चित्त के स्थिर करने के लिए और विषय कषाय स्वरूप दुर्ध्यान से बचने के लिए परम्परा मुक्ति के कारण स्वरूप अरिहंतादि ध्यान करने योग्य है। अर्थात् ध्येय हैं। पश्चात् चित्त स्थिर होने पर साक्षात् मुक्ति का

कारण जो निज शुद्धात्म तत्त्व है वही ध्यावने योग्य है। पर द्रव्य होने से अरिहंतादि ध्यावने योग्य नहीं है, यह एकांत से ठीक नहीं है। अतः सविकल्प अवस्था में अरिहंतादि उपादेय ही है। इस प्रकार साध्य-साधन जानकर ध्यावने योग्य वस्तु में विवाद नहीं करना। पंचपरमेष्ठी का ध्यान साधक है, और आत्मध्यान साध्य है, यह निःसंदेह जानना।

अलौकिक गणित व आध्यात्मिक रहस्यमय शोधपूर्ण कविता...

मेरा शुद्ध विश्वरूप स्मरण

वैज्ञानिक श्रमण-आचार्य कनकनन्दी

(विविध चाल व याथातथ्यानुपूर्वी कविता : चन्दा है तू....., सायोनारा....., भातुकली (मराठी)....., ॐकार स्वरूपा (मराठी)....., आत्मशक्ति....., जीना यहाँ....., तू ही माता....., बिन गुरु ज्ञान.....)

आत्मा हूँ मैं परमात्मा हूँ मैं...शुद्ध-बुद्ध व आनंद हूँ मैं...
गुण हूँ मैं व गुणी हूँ मैं...अनंत गुणगण सहित हूँ मैं...

द्रव्य हूँ मैं तत्त्व हूँ मैं... मेरा ही पदार्थ हूँ मैं...
सत्य हूँ मैं चित्त हूँ मैं...सच्चिदानंद रूप मैं...

ज्ञान हूँ मैं ज्ञानी हूँ मैं...अनंतानंत ज्ञानी हूँ मैं...
एक हूँ मैं अनेक हूँ मैं...संख्य-असंख्य अनंत हूँ मैं...

अस्तित्व मैं वस्तुत्व मैं...प्रमेयत्व-द्रव्यत्व मैं...
अगुरुलघु-प्रदेशत्व हूँ मैं...चेतन व अमूर्तत्व हूँ मैं...

कारण मैं कार्य हूँ मैं...निमित्त उपादान रूप मैं...
कर्त्ता हूँ मैं भोक्ता हूँ मैं...कर्म हूँ मैं करण हूँ मैं...

सम्प्रदान मैं संबंध हूँ मैं...षट्कारक अभिन्न हूँ मैं...
गुरु हूँ मैं शिष्य हूँ मैं...पूज्य-पूजक हूँ मैं...

ध्यान हूँ मैं ध्याता हूँ मैं...ध्यान-ध्येय परे ज्ञान मैं...
उत्पाद मैं व्यय हूँ मैं...ध्रौव्य रूप अविनाशी मैं...

सर्वज्ञ हूँ अतः सर्वगत हूँ मैं...स्व-स्थित अविभागी हूँ मैं...
चैतन्य चमत्कार हूँ मैं...'कनक' अनंतानंत मैं...

बिन्दु हूँ मैं रेखा हूँ मैं... परिधि क्षेत्रफल घन हूँ मैं...
गुण हूँ मैं गुणाकार हूँ मैं...अधिक न्यून घनाघन हूँ मैं...

भाजक हूँ मैं भागाकार मैं...भागफल व भागशेष हूँ मैं...
पूर्ण हूँ मैं शून्य हूँ मैं...आदि-अंत-मध्य हूँ मैं...

केन्द्र हूँ मैं वृत्त हूँ मैं...करण व परिणाम रूप मैं...
स्वयंभू मैं अनादि हूँ मैं...अनंतानंत इयत्ता हूँ मैं...

अणु से भी सूक्ष्म रूप हूँ मैं...विश्व से भी महानतम हूँ मैं...
इन्द्रिय-यंत्र से परे हूँ मैं...मन-बुद्धि से परे हूँ मैं...

चेतन हूँ मैं अचेतन हूँ मैं...लौकिक गणित परे हूँ मैं...
सर्वज्ञ ज्ञानगम्य अनेकांत मैं...अवाक् वचन कनक/(अशब्द) हूँ मैं...

सीपुर, दिनांक 31.08.2016, प्रातः 9.18

मेरे संख्यात-असंख्यात-अनंत भेद

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा.....)

एक स्वभावी मैं हूँ चैतन्य गुणमय अविभागी स्वयंपूर्ण।
स्वयंभू-सनातन-अनादि-अनिधन जन्म-जरा-मरण शून्य।। (1)

द्विस्वभावी हूँ मैं ज्ञान चेतना व दर्शन चेतनमय।
लोकालोक त्रिकालवर्ती संपूर्ण ज्ञेय को देखने जाननेमय।। (2)

त्रिस्वभावी हूँ मैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय।
स्व-अनंत वैभव का विश्वास ज्ञान व चारित्रमय।। (3)

चतुःस्वभावी हूँ मैं अनंत ज्ञान दर्शनि सुख वीर्यमय।
स्वद्रव्य क्षेत्रकाल व भाव में ही नित्य रमणमय।। (4)

पंचस्वभावी हूँ (मैं) अहिंसासत्य अचौर्य अपरिग्रह ब्रह्मचर्यमय।
शुद्धात्मा परिणाम अहिंसा सत्य अचौर्य अपरिग्रह ब्रह्मचर्यमय।। (5)

षट् स्वभावी हूँ अभिन्न षट्कारक रूप कर्तादिमय।
कर्ता[1] कर्म[2] करण[3] अधिकरण[4] संप्रदान[5] संबंधमय[6]।। (6)

सप्त स्वभावी हूँ अस्तिनास्ति अव्यक्तव्य आदि सप्तमय।
स्व में अस्ति पर से नास्ति व अव्यक्तव्य आदि सप्तमय।। (7)

अष्ट स्वभावी हूँ अस्तित्व[1] वस्तुत्व[2] प्रमेयत्व[3] द्रव्यत्वमय[4]।
प्रदेशत्व[5] चेतनत्व[6] व अगुरुलघुत्व[7] तथा अमूर्तमय[8]।। (8)

नव स्वभावी हूँ अनंत ज्ञान[1] दर्शन[2] सम्यक्त्व[3] वीर्यमय[4]।
दान[5] लाभ[6] भोग[7] उपभोग[8] व चारित्ररूपी[9] नवलब्धिमय।। (9)

दश स्वभावी हूँ उत्तमक्षमा[1] मार्दव[2] आर्जव[3] सत्य[4] शौचमय[5]।
संयम[6] तप[7] त्याग[8] आकिंचन्य[9] व ब्रह्मचर्यमय।। (10)

तथाहि मैं संख्यात असंख्यात अनंत गुण गणमय।
शुद्ध निश्चयनय में 'कनक' में स्थित स्व-स्वभावमय।। (11)

असंख्यात प्रदेश मुझमें स्थित अतः असंख्यातमय हूँ।
एक-एक प्रदेशों में अनंत गुण स्थित अतः अनंतमय हूँ।। (12)

एक-एक गुणों में अनंत अविभागी प्रतिच्छेद स्थित है।
अतः मैं अनंतानंत गुण स्वरूपी विश्व में महानतम हूँ।। (13)

सीपुर, दिनांक 30.08.2016, रात्रि 11.40 व प्रातः 6.04

संदर्भ-

एगोवि अणंताणं सिद्धो सिद्धाण देह अवगासं।
जम्हा सुहमत्तगुणो अवगाह गुणो पुणो तेसिं।। (693)
एकोऽपि अनन्तानां सिद्धः सिद्धानां ददात्ववकाशम्।
यस्मात्सूक्ष्मत्वगुणः अवगाहनगुणः पुनस्तेषाम्।। (693)

अर्थ-एक सिद्ध की आत्मा में अनंतानंत सिद्ध समा जाते हैं। इसका भी एक कारण यह है कि आत्मा अमूर्त है, इसलिये उनमें सूक्ष्मत्व गुण है। इसके सिवाय उनमें अवगाहनत्व गुण भी है। सूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व गुण के कारण एक सिद्ध में भी अनंतानंत सिद्ध आ जाते हैं। दीपक का प्रकाश मूर्त है फिर भी एक आले में अनंत दीपकों का प्रकाश समा जाता है फिर सिद्धों का आत्मा तो अमूर्त है इसलिये एक सिद्ध में भी अनंत सिद्धों का आत्मा आ जाता है।

सम्मत्तणाणदंसण वीरिय सुहमं तहेव अवगहणं।
अगुरु लहुमब्बवाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं।।
सम्यक्त्वज्ञानदर्शन वीर्यसूक्ष्मं तथैवावगाहनम्।
अगुरुलघु अव्याबाधं अष्ट गुणा भवन्ति सिद्धानाम्।। (694)

अर्थ–सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु, अव्याबाध, ये आठ गुण सिद्धों में होते हैं।

भावार्थ–यह संसारी आत्मा अनादिकाल से ज्ञानावरणादिक आठों कर्मों से जकड़ा हुआ है। वे आठों कर्म सब नष्ट हो जाते हैं तब सिद्ध अवस्था प्राप्त होती है। आत्मा में ऊपर लिखे आठ गुण हैं और उनको आठों ही कर्मों ने ढक रखा था। इसलिये उन कर्मों के नाश होने पर ऊपर लिखे आठ गुण अपने आप प्रकट हो जाता है। मोहनीय कर्म के नाश होने से सम्यक्त्व गुण प्रगट हो जाता है, ज्ञानावरण कर्म के नाश होने से अनंत ज्ञान प्रगट हो जाता है दर्शनावरण कर्म के नाश होने से अनंत दर्शन प्रगट हो जाता है, अंतराय कर्म के नाश होने से अनंत वीर्य प्रगट हो जाता है, आयु कर्म के अभाव होने से अवगाहन गुण प्रगट हो जाता है नाम कर्म के नाश होने से सूक्ष्मत्व गुण प्रगट हो जाता है, गोत्र कर्म के अभाव से अगुरुलघु गुण प्रगट हो जाता है और वेदनीय कर्म के अभाव में अव्याबाध गुण प्रगट हो जाता है इस प्रकार आठों कर्मों का नाश हो जाने से सिद्धों में ऊपर लिखे आठ गुण प्रगट हो जाते हैं।

जाणइपिच्छइ सपलं लोयालोयं च एक्कहेलाए।
सुक्खं सहाव जायं अणोवमं अंतपरिहीणं।।
जानाति पश्यति सकलं लोकालोकं च एक हेलया।
सुखं स्वभाव जातं अनुपमं अन्तपरिहीनम्।। (695)

अर्थ–वे सिद्ध भगवान् एक ही समय में समस्त लोकाकाश और समस्त अलोकाकाश को जानते हैं तथा सबको एक ही साथ एक ही समय में देखते हैं। उन समस्त सिद्धों का सुख शुद्ध आत्मा स्वाभाविक है, संसार की सुख की तथा उनकी कोई उपमा नहीं है और न कभी उन सिद्धों का अंत होता है। वे सदाकाल विराजमान रहते हैं।

रवि मेरु चंदसायरगयणाईयं तु णत्थि जह लोए।
उवमाणं सिद्धाणं णत्थि तहा सुक्खसंघाए।।

रवि मेरुचन्द्र सागर गगनादिकं तु नास्ति यथा लोके।
उपमानं सिद्धानां नास्ति तथा सुख संघाते।। (696)

अर्थ–सूर्य, चन्द्रमा, मेरू पर्वत, समुद्र, आकाश आदि इस लोक संबंधी समस्त पदार्थ से सिद्धों की उपमा नहीं हो सकती, अर्थात् संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसकी उपमा सिद्धों को दे सकें। इसी प्रकार उनके अनंत सुख की भी कोई उपमा नहीं है।

चलणं वलणं चिंता करणीयं किं पिणत्थि सिद्धाणं।
जम्हा अइंदियत्तं कम्माभावे समुप्पण्णं।।
चलनं वलनं चिन्ता करणीयं किमपि नास्ति सिद्धनाम्।
यस्मादतीन्द्रियत्वं कर्माभावेन समुत्पन्नम्।। (697)

अर्थ–उन सिद्ध परमेष्ठी को न कहीं गमन करना पड़ता है न अन्य कोई क्रिया करनी पड़ती है और न किसी प्रकार की चिंता करनी पड़ती है। इसका कारण यह है कि उनके समस्त कर्मों का अभाव हो गया है। इसीलिये उनको अतीन्द्रियत्व प्राप्त हो गया है।

भावार्थ–संसार में जितनी क्रियायें हैं वे सब इन्द्रियों के द्वारा होती है। सिद्ध परमेष्ठी के शरीर और इन्द्रियाँ सभी नष्ट हो गयी हैं। इसलिये उनको कोई भी क्रिया कभी नहीं करनी पड़ती है।

मैं हूँ मेरा ईश्वर

(मैं हूँ मेरा कर्त्ता-धर्त्ता-विधाता-संसार व मोक्ष का)

–आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की.....)

मैं हूँ मेरा ईश्वर, संसार से लेकर मोक्ष तक।
पुण्य-पाप व सुख-दुःख बंध तथा मोक्ष/(मुक्ति) तक।। (ध्रुव)

मेरे भाव से ही मैं कर्म बांधता हूँ पुण्य-पाप।
मेरे भाव से ही मैं मोक्ष पाऊँगा नष्ट करके पुण्य-पाप।।

सुख-दुःख भी पाता हूँ, पुण्य-पाप के फल भूत।
अनंत सुख भी पाऊँगा पुण्य-पाप नष्ट के फल भूत।। (1)

भले बाह्य द्रव्य क्षेत्र काल होते निमित्त यथा-योग्य।
तथापि वे न मेरे ईश्वर मैं ही मेरा ईश्वर यथा-योग्य।।

द्रव्य क्षेत्र काल तो होते हैं बाह्य व अजीव भूत/(अचेतन भूत)।
अचेतन होने से न होते मेरे ईश्वर तत्त्व।। (2)

अन्य जीव भी मेरा न हो सकते मेरा ईश्वर।
वे स्वयं के ईश्वर है मैं मेरा होता ईश्वर।।

मेरे में होते अनंत गुण उससे मैं मेरा ईश्वर।
अन्य द्रव्य में भी होते, अनंत गुण अतः वे स्व-ईश्वर।। (3)

ऐसे भाव-व्यवहार से, स्व-आत्मविश्वास होता दृढ़तम्।
स्वावलंबन व स्वतंत्रता, आत्म संयम होते दृढ़तम्।।

परावलंबन भी छूटता, पर दोषारोपण व राग-द्वेष।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा छूटती, न होते हैं रोष-तोष।। (4)

आत्म विश्लेषण व आत्म सुधार, होती है आत्म विशुद्धि।
स्व-कर्त्तव्य पालन उत्तरदायित्व, होती है तीव्रतम वृद्धि।।

स्व की महानता के शुद्धान, ज्ञान-आचरण होने से।
स्व-गौरव भी प्रबल होता, अहं/(मैं) भाव दृढ़ होता स्वयं में।। (5)

मैं हूँ सच्चिदानंदमय, राग द्वेष मोह वर्जित।
तन-मन-इन्द्रिय रहित, द्रव्य भाव नौकर्म रहित।।

अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय, स्वयंभू सनातम अद्वितीय।
अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व प्रमेयत्व, अगुरुलघु गुण संयुक्त।। (6)

मेरा परिणमन होता मुझमें, अन्य का होता अन्य में।
निमित्त भले होते परस्पर, किन्तु एक द्रव्य न परिणमे अन्य में।।

यह है मेरा स्वरूप ऐसा ही, होता अन्य द्रव्य में।
इसलिए 'कनकनन्दी' स्व, ईश्वर को मानता स्वयं में।। (7)

सीपुर, दिनांक 01.09.2016, मध्याह्न 12.16

संदर्भ–

कर्त्ता के विभिन्न रूप

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं।। (8)
पुद्गलकर्मादीनां कर्त्ता व्यवहारतः तु निश्चयतः।
चेतनकर्मणां आत्मा शुद्धनयात् शुद्धभावानाम्।।

According to Vyavhara Naya is the doer performer of the Pudgala Karmas. According to Nischaya Naya (Jiva is the doer performer of) Thought Karmas. According to Shuddha Naya (Jiva is the doer) of Shuddha Bhavas.

आत्मा व्यवहार से पुद्गल आदि का कर्त्ता है, निश्चय से चेतन कर्म का कर्त्ता है और शुद्ध नय से शुद्ध भावों का कर्त्ता है।

इस गाथा में जीव के विभिन्न कर्त्तृत्व भावों का वर्णन किया गया है। व्याकरण की दृष्टि से ''स्वतंत्र कर्त्ता'' अर्थात् जो कर्म को स्वतंत्र रूप से करता है उसे कर्त्ता कहते हैं। जीव भी विभिन्न अवस्था में विभिन्न कर्मों का कर्त्ता बनता है। उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि द्रव्य कर्म का तथा आदि शब्द से औदारिक, वैक्रियक और आहारक रूप तीन शरीर तथा आहार आदि छह पर्याप्तियों के योग्य जो पुद्गल पिण्ड रूप नो/ईषत् कर्म है उसका कर्त्ता है। स्थूल व्यावहारिक दृष्टि से अर्थात् उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से घट, पट, कुर्सी, टेबल, घर, चटाई, विभिन्न वैज्ञानिक उपकरण, ईंट, मूर्ति आदि का भी जीव कर्त्ता है। निश्चय की अपेक्षा अशुद्ध निश्चय नय से जीव चेतन कर्म अर्थात् मिथ्यात्व भाव, ईर्ष्या भाव, घृणा, द्वेष, लोभ, काम प्रवृत्ति, अहं प्रवृत्ति का कर्त्ता है परंतु परम शुद्ध निश्चय नय से जीव शुद्ध-बुद्ध, नित्य-निरंजन, सच्चिदानंद स्वरूप स्वभाव में परिणमन करता है तब अनंत ज्ञान, अनंत अतीन्द्रिय सुखादि भावों का कर्त्ता होता है। छद्मस्थ अवस्था में भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चय नय से स्वभाव का कर्त्ता भी होता है परंतु केवली एवं मुक्त अवस्था में तो शुद्ध निश्चय नय से पूर्ण रूप से अनंत ज्ञानादि भावों का कर्त्ता होता है। वस्तुतः यहाँ जो आध्यात्मिक दृष्टि है उसकी अपेक्षा अशुभ, शुभ, शुद्ध भावों का जो परिमणन है, उसी का कर्त्तृत्वपना यहाँ कहा गया है, न कि हस्तपादादि से जो कार्य किया जाता है उसे यहाँ कर्त्तापने में स्वीकार किया गया है और एक विशेष

आध्यात्मिक दृष्टि यह है कि शुद्ध निश्चय नय से जो शुद्ध भावों का कर्त्ता कहा गया है उसका अर्थ यह है कि उन शुद्ध भावों का जीव वेदन करता है न कि उन शुद्ध भावों का निर्माण करता है या बनाता है। प्राचीन आचार्यों ने भी जीव के विभिन्न कर्त्तापने का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यथा-

जीव परिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गल परिणमदि।

पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदे।। गा. 18 समयसार

जीव परिणाम को निमित्त मात्र करके पुद्गल कर्मभाव से परिणमन करते हैं। इसी प्रकार दैव (कर्म) को शक्ति प्रदान करने वाला पुरुष परम पुरुषार्थ से हीन पुरुषार्थ है और उस शक्ति के अनुशासन में शासित होने वाला पुरुष है। जब पुरुष उसको शक्ति प्रदान करता है, तब दैव विभिन्न रूप धारण करके विभिन्न कार्य करता है।

जह पुरिसेणाहारो गहिदो परिणमदि सो अणेय विहं।

मंसवसारुहिरादिभावे उदरग्गे संजुत्तो।।

जैसे पुरुष द्वारा ग्रहण किया गया आहार उदराग्नि से युक्त हुआ अनेक प्रकार माँस, रुधिर आदि भावों रूप परिणमता है, उसी प्रकार कर्म पुद्गल भी जीवों के रागादि भावों को प्राप्त करके 8 प्रकार अथवा अनेक प्रकार दैव रूप में परिणमन करता है।

भावो कम्म णिमित्तो कम्मं पुण भाव कारणं हवदि।

ण दु तेसिं खलु कत्ता ण विणा भूदा दु कत्तारं।। गा. 60 पंचास्तिकाय

निर्मल चैतन्यमई ज्योति स्वभाव रूप शुद्ध जीवास्तिकाय से प्रतिपक्षी भाव जो मिथ्यात्व व रागादि परिणाम है वह कर्मों के उदय से रहित चैतन्य का चमत्कार मात्र जो परमात्मा स्वभाव है, उससे उल्टे जो हृदय में प्राप्त कर्म है, उनके निमित्त से होता है तथा ज्ञानावरण आदि कर्मों से रहित जो शुद्धात्म तत्त्व है, उससे विलक्षण जो नवीन द्रव्यकर्म है सो निर्विकार शुद्ध आत्मा की अनुभूति से विरुद्ध जो रागादि भाव हैं उनके निमित्त से बंधते हैं। ऐसा होने पर भी जीव संबंधी रागादि भावों का और द्रव्य कर्मों का परस्पर उपादान कर्त्ता जीव ही है तथा द्रव्य कर्मों का उपादानकर्त्ता कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल ही है। दूसरे व्याख्यान से यह तात्पर्य है कि यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से विचार किए जाने पर जीव रागादि भावों का कर्त्ता है यह बात सिद्ध है।

आदा कम्म मिलिमसो परिणामं लहदि कम्म संजुत्तं।

तत्तो सिलिसदि कम्मं तम्हा कम्मं तु परिणामे।। 121 प्रवचनसार

''संसार'' नामक जो यह आत्मा का तथाविध उस प्रकार का परिणाम है वही द्रव्यकर्म के चिपकने का बंध हेतु है, अब उस प्रकार के परिणाम का हेतु कौन है? इसके उत्तर में कहते हैं कि द्रव्यकर्म उसका हेतु है क्योंकि द्रव्यकर्म की संयुक्तता से ही वह बंध है।

ऐसा होने से इतरेतराश्रय दोष आएगा क्योंकि अनादिसिद्ध द्रव्यकर्म के साथ संबद्ध आत्मा का जो पूर्व का द्रव्यकर्म है उसका वहाँ हेतु रूप से ग्रहण किया गया है।

इस प्रकार नवीन द्रव्यकर्म जिसका कार्यभूत है और पुराना द्रव्यकर्म जिसका कारणभूत है, ऐसा आत्मा का तथाविध परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से द्रव्य कर्म ही है और आत्मा भी अपने परिणाम का कर्त्ता भी उपचार से है।

जीव परिणाम हेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गल कम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमदि।। (86)
ण वि कुव्वदि कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्ण णिमित्तेण दु परिणामं जाण दोण्हंपि।। (87)

यद्यपि जीव के राग-द्वेष परिणामों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य कर्मत्व रूप परिणमन करता है। वैसे ही पौद्गलिक कर्मों के उदय का निमित्त पाकर जीव रागादि रूप परिणमन करता है। तथापि जीवकर्म के गुण रूपादिक को स्वीकार नहीं करता, उसी भाँति कर्म भी जीव के चेतनादिक गुणों को स्वीकार नहीं करता किन्तु मात्र इन दोनों का परस्पर एक-दूसरे के निमित्त से उपर्युक्त विकारी परिणमन होता है।

एदेण कारणेण दु कत्ता आदा सकेण भावेण।
पुग्गल कम्मकदाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। गा. 88 समयसार

इस प्रकार जीव और पुद्गल के परस्पर में निमित्त कारणपना है इसका व्याख्यान किया गया है।

व्यवहार नय से भिन्न षट्कारक के अनुसार जीव के राग-द्वेष निमित्त पाकर कर्म परमाणु, द्रव्यकर्म रूप में परिणमन करता है। द्रव्यकर्म के उदय से भावकर्म उत्पन्न होते हैं परन्तु निश्चयनय से एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कर्त्ता नहीं होने से जीव के परिणाम का हेतु पुद्गल नहीं है एवं पुद्गल के परिणाम का हेतु जीव नहीं है। पंचास्तिकाय में कहा है-

''निश्चयनयेनाभिन्नकारकत्वाकर्मणो

जीवस्य च स्वयं स्वरूप कर्तृत्वमुक्तम्।''

निश्चय से अभिन्न कारक होने से कर्म और जीव स्वयं स्वरूप के अपने-अपने रूप के कर्त्ता हैं। निश्चय से जीव, पुद्गल का कर्त्ता नहीं होने पर भी व्यवहार नय से कर्त्ता है।

यदि एकांततः निश्चयनय के समान व्यवहारनय से भी जीव, कर्म का कर्त्ता नहीं है तब अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जायेंगे। व्यवहार से भी जीव कर्म का कर्त्ता नहीं होने पर कर्म बंधन नहीं होगा, कर्मबंध के अभाव से संसार का अभाव हो जाएगा। संसार के अभाव से मोक्ष का भी अभाव हो जाएगा, जो कि आगम, तर्क, प्रत्यक्ष एवं अनुभव विरुद्ध है। निश्चयनय का विषय व्यवहार से संयोजना करके शिष्य, गुरुवर्य कुंदकुंदाचार्य से निम्न प्रकार प्रश्न करता है।

कम्मं कम्मं कुव्वदि जदि सो अप्पा करेदि अप्पाणं।

किध तस्स फलं भुञ्जदि अप्पा कम्मं च देदि फलं।। गा. 63 पंचास्तिकाय प्राभृत

आगे पूर्वोक्त प्रकार के अभेद छह कारक का व्याख्यान करते हुए निश्चयनय से यह व्याख्यान किया गया है। इसे सुनकर 'नयो' के विचारों को न जानता हुआ शिष्य एकांत का ग्रहण करके पूर्व पक्ष करता है।

यदि द्रव्यकर्म एकांत से बिना जीव के परिणाम की अपेक्षा करता है और वह आत्मा अपने को ही करता है-द्रव्यकर्म को नहीं करता है तो किस तरह आत्मा का उस बिना किए हुए कर्म के फल को भोगता है और यह जीव से बिना किया हुआ कर्म आत्मा को फल कैसे देता है? इस प्रश्न का आगमोक्त यथार्थ प्रत्युत्तर देते हुए कुंदकुंद स्वामी बताते हैं-

''निश्चयेन जीवकर्मणोश्चैककर्तत्वेऽपि व्यवहारेण

कर्मदत्तफलोपलंभो जीवस्य न विरुद्धयत इत्यत्रोक्तम्।''

जीवा पुग्गलकाया अण्णोण्णागाढ़गहणपडिबद्धा।

काले विभुज्जमाणा सुहदुक्खं दिंति भुंजन्ति।। (67)

आगे शिष्य ने जो पूर्वपक्ष किया था कि बिना किए हुए कर्मों का फल जीव किस तरह भोगता है उसी का उत्तर नय विभाग से जीव फल को भोगता है ऐसा युक्तिपूर्वक दिखाते हैं।

संसारी जीवों के अपने-अपने रागादि परिणामों के निमित्त से तथा पुद्गलों में स्निग्ध-रुक्ष गुण के कारण द्रव्य-कर्मवर्गणाएँ जीव के प्रदेशों में जो पहले से ही बंधी हुई होती हैं वे ही अपनी स्थिति के पूरे होते हुए उदय में आती हैं तब अपने-अपने फल को प्रगट कर झड़ जाती है, उसी समय वे कर्म अनाकुलता लक्षण जो पारमार्थिक सुख है उससे विपरीत परम आकुलता को उत्पन्न करने वाले सुख तथा दुःख उन जीवों का मुख्यता से देती है, जो मिथ्यादृष्टि है अर्थात् जो निर्विकार चिदानंदमयी एक स्वरूप भाव जीव को और मिथ्यात्व रागादि भावों को एक रूप ही मानते हैं और जो मिथ्याज्ञानी हैं अर्थात् जिनको यह ज्ञान है कि जीव राग-द्वेष-मोहादि रूप ही होते हैं तथा जो मिथ्या चारित्री हैं अर्थात् जो अपने को रागादि के परिणमन करते हुए जीव अभ्यंतर में अशुद्ध निश्चय से ही हर्ष या विषाद रूप तथा व्यवहार से बाहरी पदार्थों में नाना प्रकार इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों के प्राप्ति रूप मधुर या कटुक विष के रस के आस्वादन रूप सांसारिक सुख या दुःख की वीतराग परमानंदमयी सुखामृत के रसास्वाद के भोग को न पाते हुए भोगते हैं, ऐसा अभिप्राय जानना।

एवं कत्ता भोत्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।
हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।। (69)

इस प्रकार अपने कर्मों से कर्त्ता भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

इस प्रकार प्रगट प्रभुत्व शक्ति के कारण जिसने अपने कर्मों द्वारा कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व का अधिकार ग्रहण किया है ऐसे इस आत्मा को अनादि मोहाच्छादितपने के कारण विपरीत अभिनिवेश की उत्पत्ति होने से सम्यग्ज्ञान ज्योति अस्त हो गई है, इसलिए यह सान्त अथवा अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

जं जं जे जे जीवा पज्जाणं परिणमंति संसारे।
रायस्स य दोसस्स य मोहस्स वसा मुणेयव्वा।। (988)

संसार में जो-जो जीव जिस-जिस पर्याय में परिणमन करते हैं वे सब राग-द्वेष और मोह के वशीभूत होकर ही परिणमते हैं, ऐसा जानना।

भोक्ता के विभिन्न रूप

ववहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मफलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।। (9)

व्यवहारात् सुखदुःखं पुद्गल कर्मफलं प्रभुङ्क्ते।

आत्मा निश्चयनयतः चेतनभावं खलु आत्मनः।।

According to Vyavahara Naya, Jiva enjoys happiness and misery as fruits of Pudgala karmas, According to Nischaya Naya, Jiva has conscious Bhavas only.

आत्मा व्यवहार से सुख-दुःख रूप पुद्गल कर्मों को भोगता है और निश्चय नय से आत्मा चेतन स्वभाव को भोगता है।

क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। न्यूटन के तृतीय गति सिद्धांतानुसार-

To every action, there is an equal and opposite reaction.

अर्थात् जहाँ क्रिया है, वहाँ पर उसकी प्रतिक्रिया भी होती है एवं प्रतिक्रिया उस क्रिया की विपरीत समानुपाती क्रिया होती है। जो जैसा करता है, वह उसी प्रकार उसका भोक्ता भी होता है। जैसे बबूल के वृक्ष बोने पर बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगा और उसमें बबूल की ही फलियाँ लगेंगी, आम के बीज बोने पर आम के वृक्ष ऊगेंगे एवं उसमें आम के फल लगेंगे। इसलिए कहते हैं "As you sow, sow you reap" अर्थात् जैसा बायेंगे वैसा काटेंगे व पायेंगे। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है-

यत्प्राग्जन्मनि संचितं तनुभृतां कर्माशुभं व शुभं।

यद्दैव यदुदीरणादनुभवन् दुःख सुख वागतम्।।

जीव ने पूर्व भव में जिस अशुभ भाव रूप कर्त्तापने से पापकर्म का एवं शुभ भाव रूप कर्त्तापने से पुण्य कर्म का संचय किया है वह दैव है उसकी उदीरणा उदय से यथाक्रम से दुःख एवं सुख का अनुभव करता है।

गोस्वामी तुलसी दास ने भी कहा है-

कर्म प्रधान विश्व करिराखा।

जो जस करहि फलहि तस चाखा।।

अमितगति आचार्य ने कहा भी है-

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।

परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदां।। (30)

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा किए गए शुभ एवं अशुभ फल को प्राप्त

होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जाएगा।

निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददापि किंचन्।
विचार यन्नेवमनन्य मानसः, परो ददातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। (3)

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्रचित्त हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

जीव उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से इष्ट तथा अनिष्ट पाँचों इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न सुख एवं दुःख को भोगता है। अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से अंतरंग में सुख तथा दुःख को उत्पन्न करने वाला द्रव्यकर्म रूप पुण्य एवं पाप का उदय है उसको भोगता है। अशुद्ध निश्चयनय से हर्ष तथा विषाद रूप सुख-दुःख को भोगता है और शुद्ध निश्चयनय से रत्नत्रय से उत्पन्न अविनाशी अतीन्द्रिय अक्षय आनंद रूप सुखामृत को भोगता है।

मन के चमत्कार

संदर्भ-डॉ. मर्फी ने अमेरिका के अलावा यूरोप व एशिया के कई देशों की यात्राएँ कीं। अपने व्याख्यानों में वे एक ईश्वर, ''मैं हूँ'', में विश्वास पर आधारित जीवन सिद्धांतों और अवचेतन मन की शक्ति को समझने के महत्त्व पर जोर देते थे।

डॉ. मर्फी की पैंफलेट के आकार की पुस्तकें इतनी लोकप्रिय थी कि वे उन्हें अधिक विस्तृत और ज्यादा लंबी पुस्तकों में बदलने लगे। उनकी पत्नी ने हमें उनके लिखने के तरीके के बारे में बताया है। उन्होंने बताया कि वे अपनी पांडुलिपियाँ एक तख्ती पर लिखते थे और अपनी पेंसिल या पेन इतनी कसकर दबाते थे कि आप अगले पेज पर उसकी छाप से ही पूरा पेज पढ़ सकते थे। लिखते समय वे तंद्रा में नजर आते थे। उनकी लेखन शैली उनके ऑफिस में चार से छह घंटे तक बिना विचलित हुए लिखने की थी, जब तक कि वे रुक नहीं जाते थे और कहते थे कि आज के लिए काफी हो गया। हर दिन एक जैसा रहता था। उन्होंने जो शुरू किया था, उसे पूरा करने के लिए वे अगली सुबह से पहले कभी दोबारा ऑफिस नहीं जाते थे। जब वे काम करते थे, तब कोई भोजन या पेय नहीं लेते थे। वे अपने विचारों और पुस्तकों के विशाल संग्रह के साथ अकेले रहते थे, जिनसे वे समय-समय पर संदर्भ

देखते थे। उनकी पत्नी उन्हें आगंतुकों और फोन कॉल से बचाती थी तथा चर्च व अन्य गतिविधियों को सुचारू रूप से चलाती रहती थी।

डॉ. मर्फी हमेशा उन मुद्दों पर चर्चा करने और उन बिंदुओं को समझाने के एक सरल तरीके की तलाश कर रहे थे, जो विस्तार से बताये कि यह व्यक्ति को कैसे प्रभावित करता है। उन्होंने अपने कुछ व्याख्यान कैसेट, रिकॉर्ड या सीडी पर पेश करने का चुनाव किया, जब ये प्रौद्योगिकियाँ विकसित हुई और ऑडियो के क्षेत्र में नये तरीके उभरे।

सीडी और कैसेट का उनका पूरा काम वे साधन हैं, जिनका इस्तेमाल अधिकतर समस्याओं के लिए किया जा सकता है, जो जीवन में इंसान के सामने आती हैं। इरादे के अनुसार लक्ष्य हासिल करने के ये तरीके समय के इम्तिहान में खरे उतरे हैं। **उनकी बुनियादी विषयवस्तु यह है कि समस्या का समाधान इंसान के भीतर निहित है। बाहरी तत्त्व किसी की सोच नहीं बदल सकते। यानि, आपका मन आपका खुद का है। बेहतर जीवन जीने के लिए आपको बाहरी परिस्थितियों को नहीं, बल्कि अपने मन को बदलना होगा। आप अपनी खुद की तकदीर बनाते हैं। परिवर्तन की शक्ति आपके मन में है और अपने अवचेतन मन का इस्तेमाल करके आप बेहतरी के ये परिवर्तन कर सकते हैं।**

डॉ. मर्फी ने 30 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उनकी सबसे मशहूर पुस्तक द पावर ऑफ अनकॉन्शस माइंड 1963 में प्रकाशित हुई और तुरंत बेस्टसेलर बन गई। इसे सर्वश्रेष्ठ स्व-सहायता पुस्तकों में से एक करार दिया गया। इसकी लाखों प्रतियाँ बिक चुकी हैं और अब भी पूरे संसार में बिक रही हैं।

उनकी कुछ अन्य बेस्टसेलिंग पुस्तकों में शामिल थी-टेलीसाइकिक्स-द मैजिक पावर ऑफ परफेक्ट लिविंग, द अमेजिंग लॉज ऑफ कॉस्मिक माइंड, सीक्रेट्स ऑफ द आई-चिंग, द मिरेकल ऑफ माइंड डाइनैमिक्स, यॉर इनफिनिट पावर टु बी रिच और द कॉस्मिक पावर विदिन यू।

डॉ. मर्फी का देहांत सितंबर 1981 में हो गया और इसके बाद उनकी पत्नी डॉ. जीन मर्फी ने उनकी विरासत को जारी रखा। 1986 में उन्होंने एक व्याख्यान में अपने स्वर्गीय पति का उद्धरण देते हुए उनके दर्शन को दोहराया-

मैं पुरुषों और स्त्रियों को उनका दैवी उद्‌गम बताना चाहता हूँ और उनके

भीतर मौजूद शक्तियों के बारे में भी। मैं यह जानकारी देना चाहता हूँ कि यह शक्ति उनके भीतर है और वे अपने खुद के सहायक है और अपनी मुक्ति हासिल करने में खुद सक्षम है। यही बाइबल का संदेश है और आज हमारी नब्बे प्रतिशत दुविधा इस कारण है, क्योंकि हमने बाइबल के जीवन बदलने वाले सत्यों की गलत, शाब्दिक व्याख्या कर ली है।

मैं बहुसंख्यक लोगों, सड़क के आदमी को, उस औरत को जो कर्त्तव्य के बोझ से दबी जा रही है और अपने गुणों तथा योग्यताओं को दमित कर रही है तक पहुँचना चाहता हूँ; मैं हर अवस्था या चेतना के स्तर पर मौजूद दूसरे लोगों की मदद करना चाहता हूँ, ताकि वे मन के चमत्कार सीखें।

उन्होंने अपने पति के बारे में कहा-**वे व्यावहारिक संन्यासी थे, उनमें विद्वान की बौद्धिकता थी, सफल प्रबंधक का दिमाग था, कवि का हृदय था। उनका संदेश सार रूप में यह था-''आप सम्राट हैं, अपने संसार के शासक हैं, क्योंकि आप ईश्वर के साथ एक हैं।''**

मेरे श्रेष्ठतम लक्ष्य-भावना-प्रयत्न

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

श्रेष्ठतम का ही लक्ष्य मैं धरूँ...तदनुकूल ही मैं भावना करूँ...
नवकोटि से मैं प्रयत्न करूँ...यथायोग्य लक्ष्य को पाता चलूँ...

मेरा लक्ष्य है मुझे ही पाना...आत्मविशुद्धि है मेरी भावना...
समता शांति है मेरा प्रयत्न...उसका फल है आत्म-अनुभव...(1)...

मुझे पाने से मैं सिद्ध बनूँगा...सिद्ध (होने) से सच्चिदानंद बनूँगा...
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य...जन्म जरा मरण रहित शुद्ध-बुद्ध...

इसी लक्ष्य अनुसार (मैं) भावना करूँ...मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ धरूँ...
उदार पावन भावना मैं करूँ...सरल-सहज मृदु भावना धरूँ...(2)...

क्षमा सहिष्णुता व धैर्य मैं धरूँ...सनम्र सत्यग्राही भावना धरूँ...
स्व-पर-विश्वहित भावना करूँ...भावना हेतु दरिद्र कभी न बनूँ...

समता-शांति से मैं प्रयत्न करूँ...दिखावा आडम्बर ढोंग न करूँ...
प्रमाद आलस्य द्वन्द्व मैं त्यागूँ...अंधविश्वास-अतिवाद मैं त्यागूँ...(3)...

इसी से आत्म-अनुभव मैं करूँ...वीतराग विज्ञान मैं प्रगट करूँ...
ज्ञान-ज्ञेय व हेय-उपादेय जानूँ...स्व को स्वीकारूँ अन्य को त्यागूँ...

इसी हेतु (ही) नवकोटि से साधना करूँ...श्रेष्ठ विचार आहार विहार करूँ...
तदनुकूल स्थान में निवास करूँ...संगति व समिति पालन करूँ...(4)...

इससे विपरीत सभी मैं त्यागूँ...ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागूँ...
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागूँ...संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्यागूँ...

मेरा लक्ष्य को मैं अवश्य पाऊँगा...अभी नहीं तो आगे पाऊँगा...
बीज से वृक्ष फूल-फल आते...यह सब अनुभव 'कनक' करते...(5)...

छोटा लक्ष्य व खोटी भावना द्वारा...गलत पुरुषार्थ नवकोटि के द्वारा...
यदि शीघ्र मिलते हैं फल प्रचुर...तथापि मैं न त्याग करूँ श्रेष्ठ विचार...(6)...

सीपुर, दिनांक 26.08.2016, रात्रि 9.05

आत्मविकास से करूँ पूर्ण विकास

(आत्म संबोधन-आत्म सुधार-प्रायश्चित्त हेतु कविता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

डजया रे! तू आत्मविकास करऽऽ
अन्य सभी विकास अनुसंगिक होंगेऽऽ छाया यथा आकार अनुसारऽऽ (ध्रुव)

आत्मविकास हेतु आत्म साधनाऽऽ आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रऽऽ
सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि न चाहिएऽऽ ख्याति पूजा लाभ धन जनऽऽ
चाहिए (केवल) आत्म संशोधनऽऽ।। (1)

पर तो होता पर पर से (होता) दुःखऽऽ आत्मा का होता आत्मा (अतः) आत्मा से सुखऽऽ
अतः तू पर त्याग आत्मा को ही भजऽऽ जिससे मिलेगा तुझे आत्मिक सुखऽऽ
आत्म सुख ही परम सुखऽऽ।। (2)

राजा महाराजा चक्री (अतः) बने वैरागीऽऽ सत्ता संपत्ति आदि त्याग करऽऽ
जिससे वे बने अरिहंत सिद्ध भगवान्ऽऽ करके आत्मा का ही साधनाऽऽ
निस्पृह वीतरागी ध्यान सेऽऽ।। (3)

कोई भी महापुरुष न बने भगवन्तऽऽ परावलंबन-परिग्रह सेऽऽ
इसी से होता सिद्ध आत्मा से आत्मविकासऽऽ (भले) सुद्रव्य क्षेत्र काल निमित्तऽऽ
वृक्ष हेतु बीज ही प्रमुखऽऽ/मृदा जलादि गौण निमित्तऽऽ।। (4)

सत्ता संपत्ति आदि यथा परऽऽ राग द्वेष मोहादि भी तथा परऽऽ
अतः तू त्यागो राग द्वेष मोहऽऽ आत्मा से ही आत्म विकासऽऽ
'कनक' करो आत्म निवासऽऽ।। (5)

सीपुर, दिनांक 27.08.2016, रात्रि 11.42 से 12.22

नैतिकता (भद्रता) < पुण्य क्रिया (धार्मिकता) < आध्यात्मिकता मय मैं बनूँ

(नैतिकता बिना पुण्य क्रिया संभव नहीं दोनों बिना आध्यात्मिकता नहीं)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा.....)

जीव/(डजया) रे तू आध्यात्मिक बनोऽऽ
आध्यात्मिक हेतु नैतिक बनोऽऽ नैतिक से पुण्य क्रियाशाली बनोऽऽ

नैतिकता बिना न होती पुण्य क्रियाऽऽ दोनों के बिना न आध्यात्मिकताऽऽ
आध्यात्मिकता बिना न मुक्ति मिलतीऽऽ मुक्ति बिना न मिलती दुःख मुक्तिऽऽ
मुक्ति हेतु पाओ तीनों दशाऽऽ (1)

अन्याय-अत्याचार भ्रष्टाचार त्यागऽऽ कलह-विसंवाद-आतंकवादऽऽ
शोषण-मिलावट-ठगी-चोरी बलात्कारऽऽ पर पीड़न त्याग है नैतिकताऽऽ
परनिंदा अपमान त्याग नैतिकताऽऽ (2)

आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र युक्तऽऽ धारण अणुव्रत व महाव्रतऽऽ
दान-दया सेवा पूजा आराधनाऽऽ तप त्याग संयम स्वाध्यायऽऽ
मैं हूँ सच्चिदानंद आत्म श्रद्धानऽऽ यहाँ से प्रारंभ आध्यात्मिकताऽऽ (3)

समता शांति आत्म विशुद्धि सेऽऽ बढ़ती है उत्तरोत्तर आध्यात्मिकताऽऽ
निस्पृह निराडम्बर आत्म ध्यान सेऽऽ बढ़ती है उत्तरोत्तर आध्यात्मिकताऽऽ
आध्यात्मिकता से आत्म विकासऽऽ (4)

वीतरागता आत्मानुभूति सेऽऽ संकल्प विकल्प संक्लेश त्याग सेऽऽ
अहंकार ममकार वर्चस्व त्याग सेऽऽ बढ़ती जाती आध्यात्मिकताऽऽ
राग-द्वेष मोह की क्षीणताऽऽ (5)

जिससे निर्विकल्प शुक्ल ध्यान होताऽऽ स्वयं में ही स्वयं का होता ध्यानऽऽ
जिससे राग द्वेष मोह क्षय होतेऽऽ स्वयं में ही स्वयं होता परिपूर्णऽऽ
'कनक' (यह) तेरा स्व-स्व रूप पूर्णऽऽ शुद्ध-बुद्ध आनंद परिपूर्णऽऽ (6)

अधिकतर व्यक्ति न होते नैतिकऽऽ नैतिक बिना न बनते धार्मिकऽऽ
दोनों बिना जो बनते आध्यात्मिकऽऽ ऐसे जन होते ढोंगी-पाखण्डीऽऽ
अतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होते ये जनऽऽ (7)

सीपुर, दिनांक 23.08.2016, प्रातः 7.35

संदर्भ-

बोधि वृक्ष : जीवन दर्शन

सत्य की प्रखर ज्योति में खुद को बह जाने दो

-स्वामी विवेकानंद

जो सत्य है उसको साहसपूर्वक निर्भीकता के साथ लोगों से कहो। उससे किसी को कष्ट होता है या नहीं, इस ओर ध्यान मत दो। दुर्बलता को कभी प्रश्रय मत दो। सत्य की ज्योति यदि बुद्धिमान मनुष्यों के लिए यदि अत्यधिक मात्रा में प्रखर होती है, उनको बहा ले जाती है, तो ले जाने दो। वे जितना अधिक शीघ्र बह जाये अच्छा है। तुम अपनी अंतस्थ आत्मा को छोड़कर किसी ओर के सामने सिर मत झुकाओ। जब तक तुम यह अनुभव नहीं करते कि तुम स्वयं देवों के देव हो तब तक तुम मुक्त नहीं हो सकते।

ज्ञानवाणी

द्वंद्वों से मुक्त होने का एकमात्र रास्ता अध्यात्म ही है। अध्यात्म की शरण में जाये बिना जीवन में फैले अंधकार को नहीं मिटाया जा सकता।

अद्वैत–ज्ञान भेदभाव को मिटा देता है क्योंकि इंसान भेद-बुद्धि की वजह से ही सभी में भेद करता है। यह भेद करने वाली बुद्धि इंसान के भीतर जीवन भर कायम रहती है। लेकिन जब साधक ज्ञान के रास्ते पर आगे बढ़ता है, तब उसमें समस्त का भाव पैदा होने लगता है। यही समता का भाव उसमें अद्वैत का भाव पैदा करता है, जिससे सबके लिए एक जैसा भाव आ जाता है। जो अद्वैत भाव में टिके रहते है। वे सभी प्राणी मोक्ष को ही प्राप्त होते हैं।

द्वंद्व–मनुष्य जीवन में विभिन्न द्वंद्व व्याप्त हैं। इन द्वंद्वों से मुक्त होने का एकमात्र रास्ता अध्यात्म ही है। अध्यात्म की शरण में जाये बिना व्यक्ति जीवन में फैले अंधकार और अनैतिकता के द्वंद्व को नहीं मिटा सकता। अध्यात्म का शतांश पालन करने वाला व्यक्ति भी जीवन में मुक्ति का मार्ग खोज सकता है। नीतिहीनता के घोर अंधेरे में अध्यात्म ही ऐसा दीपक है जिसके सहारे जीवन के पथ को आलोकित किया जा सकता है।

आनंद–आनंद में अहंकार तिरोहित हो जाता है, जैसे कपूर उड़ जाए बस ऐसे। दुःख में अहंकार रहता है और जिसको भी अपने अहंकार को बचाना है, उसे अपने दुःख को बचाना होगा। जहां आनंद है, वहां कोई अहंकार नहीं है। मैं हूं यह भाव नहीं पाया जाता। परमात्मा है, लेकिन मैं नहीं। सागर है, लेकिन बूंद नहीं। चैतन्य की झील इतनी मौन होती है कि एक लहर भी नहीं उठती, उस अनुभूति का नाम आनंद है। (राजस्थान पत्रिका)

आत्म संबोधन–आत्म सुधार परक कविता

अनुभव आता है धीरे-धीरे

–आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मोक्ष पद मिलता धीरे-धीरे....., सायोनारा.....)

अनुभव आता है धीरे-धीरे...
जिज्ञासु बनो! विनम्र बनो!...सत्य को जानो! सत्य को मानो!...(ध्रुव)...

उदार बनो! सहिष्णु बनो!...हठ को छोड़ो! ग्रंथी खोलो!...
पावन बनो! समता धरो!...अनुभव आयेगा धीरे-धीरे!...(1)...

स्वाध्याय करो! मनन करो!...समीक्षा करो! हित को गहो!...

दोषों को छोड़ो! गुणों को गहो!...अनुभव आता है धीरे-धीरे!...(2)...

संकल्प त्यागो! विकल्प हनो!...संक्लेश त्यागो! शान्ति को गहो!...
एकाग्र बनो! सुध्यान करो!...अनुभव बढ़ेगा धीरे-धीरे!...(3)...

अपेक्षा छोड़ो! उपेक्षा हरो!...प्रतीक्षा होगी क्षीण तेरी!...
स्वाधीन होगी साधना तेरी!...अनुभव बढ़ेगा शीघ्र तेरे!...(4)...

आसक्ति छोड़ो! निस्पृह बनो!...राग-द्वेष होंगे क्षीण तेरे!...
विशुद्ध होगा भाव तेरे!...अनुभव बढ़ेगा तीव्र तेरे!...(5)...

शत्रुता छोड़ो! मित्रता पालो!...विश्व बंधुत्व भाव तू धरो!...
भावना होगी वैश्विक/(व्यापक) तेरी!...अनुभव होंगे वैश्विक तेरे!...(6)...

आत्म सम्मान सभी को मानो!...सव्वे सुद्धा हु सुद्धणय से जानो!...
मैत्री प्रमोद करुणा धरो!...अनुभव होगा साम्य पूरे!...(7)...

निन्दा न करो! प्रशंसा करो!...ईर्ष्या घृणा व तृष्णा छोड़ो!...
मौन को धरो! विक्षोभ छोड़ो!...अनुभव में आयेगी शुचिता पूरे!...(8)...

ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व त्यागो!...विभाव भाव समस्त त्यागो!...
गुणी से सीखो! अगुणी से सीखो!...ज्ञान-वैराग्य बढ़ेंगे तेरे!...(9)...

अन्तःप्रज्ञा तेरी तीव्र बढ़ेगी!...अतिचेतना तेरी समृद्ध होगी!...
बंध छूटेंगे! निर्बन्ध होगा!...अनंत चेतना प्रगट होगी!...
'कनक' पायेगा अनुभव पूरे!...(10)...

सीपुर, दिनांक 17.08.2016, अपराह्न 6.40

अतिचेतन मन और समस्या समाधान का रचनात्मक तरीका

अतिचेतन मन हमारे स्व का अत्यंत आवश्यक हिस्सा है जो कि सामान्यतः चेतना द्वारा संचालित नहीं होता। अतिचेतन मन के संचालन के लिए ध्यान, अनासक्ति, स्व-सुझाव, अनुष्ठान आदि को व्यवहार में शामिल करना चाहिए। **-विलिस हरमन**

अतिचेतन मन हमारे संपूर्ण व्यक्तित्व का अति महत्वपूर्ण हिस्सा है अतः इसे

समस्या समाधान के लिए किए जा रहे हरेक संवाद या विमर्श में शामिल किया जाना चाहिए।

यह समझना जरूरी है कि चेतन, अवचेतन और अतिचेतन मन ये सभी हमारे एक ही मन के विविध हिस्से हैं। इनमें से सभी के अपने कार्य हैं। अध्याय 7 में चेतन और अवचेतन मन के कार्यों को विस्तार से बताया गया है। जैसा कि मैंने वादा किया था, अब हम अतिचेतन मन की गहराई से पड़ताल करने का प्रयास करेंगे और आपको समस्या समाधान में अतिचेतन मन को शामिल करने का तरीका कदम दर कदम बतायेंगे।

इससे पहले अतिचेतन मन के कार्य और विशेषताओं की बात करते है-

1. अतिचेतन मन सारी रचनात्मकता का स्त्रोत है।

-मन का चेतन हिस्सा रचना नहीं कर सकता। यह या तो अवचेतन मन में संचित सूचनाओं को विस्तार देता है या अन्य स्त्रोतों जैसे लोगों से, पुस्तकों से, कम्प्यूटर आदि से प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करता है।

-चेतन मन निगमन विधि द्वारा उस समय कुछ समस्याओं का हल सुझा सकता है, जब वह उन संचित सूचनाओं का अध्ययन करता है, जिनमें समाधान छिपा होता है।

-अतिचेतन मन उन सूचनाओं को भी विस्तारित कर सकता है या उपयोग में ला सकता है जो अवचेतन मन में संग्रहित नहीं है। सच कहा जाए तो यह सार्वभौमिक सूचनाओं का उपयोग कर सकता है जो कि चेतन और अवचेतन मन की क्षमताओं से परे जाकर संपूर्ण रचनात्मकता में परिलक्षित होती है। हमने पिछले अध्याय में कुछ कलाकारों, संगीतज्ञों आदि के उदाहरण दिए थे जिनके पास ये रचनात्मकता स्वयं चलकर आई, इसमें उनका कोई हाथ नहीं था।

निष्कर्ष-हमारे मन के विचार चेतन मन के स्तर पर ही आते है और उन पर मन आगे काम करता है और इच्छा करता है।

-संगीतज्ञ के लिए संगीत

-आविष्कारकों के लिए उपकरण

-लेखकों के लिए कथानक

2. अतिचेतन मन लक्ष्य आधारित अभिप्रेरण हेतु समर्थ होता है।

अभिप्रेरण दो तरह के होते है-

(अ) रचनात्मक अभिप्रेरण-जब हम उस वस्तु या लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जुट जाते हैं जिसे हम सचमुच पाना चाहते है।

(ब) प्रतिबंधात्मक अभिप्रेरण-जब हम किसी अन्य की इच्छानुसार तय किए गए कार्यों को करने के लिए प्रेरित होते हैं जैसे हमारे अधिकारी, अभिभावक, शिक्षक आदि द्वारा तय किए गए लक्ष्य। इसमें हमारे मन की इच्छा शामिल नहीं होती मगर हम उन्हें पूरा करते हैं क्योंकि यह हमारी बाध्यता होती है।

अतिचेतन मन हमारे भीतर शक्ति का प्रवाह तभी आरंभ करता है जब हम रचनात्मक रूप से प्रेरित होते हैं, जब हम अपनी इच्छा के कार्य करते हैं तो हम उन्हें पूरा करने में थकते नहीं हैं मगर दूसरों की इच्छा के कार्यों को करने में हम थकते हैं क्योंकि उन्हें हम किसी बाध्यता के तहत करते हैं।

यह आवश्यक है कि हम अपने लक्ष्यों को रचनात्मक अभिप्रेरण के साथ ही एकरूप करे और जहाँ तक हो सके स्व-संवाद करते समय भी ''मुझे करना पड़ेगा'' की बजाय ''मैं करना चाहता हूँ'' का अनुसरण करे ताकि प्रतिबंधित प्रेरणा को रचनात्मक प्रेरणा में बदलकर शक्ति के ह्रास को रोका जा सके।

3. अतिचेतन मन अचेतन स्तर पर काम करता है।

-आप इसे देख नहीं सकते।

-इसे कहाँ देखा जाए, यह भी पता नहीं होता है।

4. अतिचेतन मन के पास अपना कंप्यूटर होता है जो चेतन मन के द्वारा इसके पास लाई गई हर समस्या का समाधान कर सकता है और उस समस्या का सबसे अच्छा हल सुझा सकता है।

वह समय महत्वपूर्ण है। यदि आप अतिचेतन मन द्वारा सुझाए गए समाधान का प्रयोग नहीं करना चाहते और आपकी समस्या में समय के साथ कुछ और परिवर्तन भी हुए हैं जिन्हें आप अतिचेतन मन के सामने रखना चाहते हैं तो इस स्थिति में अतिचेतन मन आपके सामने या तो वही समाधान पुनः रखता है या फिर आपकी समस्या के अनुरूप कुछ बदलाव के साथ समाधान सुझाता है।

आपको अपनी हर समस्या के लिए अतिचेतन मन का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं होती। आपकी 90 प्रतिशत समस्याओं को चेतन मन के द्वारा

सुलझाया जा सकता है यदि उसके पास इस तरह की सूचनाएँ संग्रहित हो।

5. अतिचेतन मन अवचेतन मन में संग्रहित सभी सूचनाओं को परख सकता है और उसमें से उपयोगी तथा अनुपयोगी सूचनाओं को अलग भी कर सकता है।

याद रहे कि हमारे अवचेतन मन में संग्रहित सारी सूचनाएँ हमारे पूर्वानुभावों और उनसे जुड़ी भावनाओं की स्मृति होती हैं। इसमें वे सारे अनुभव भी शामिल होते हैं जो गलत सूचनाओं पर आधारित हो या हमारी वर्तमान स्थिति में पूरी तरह से अनुपयोगी हो। फिर भी ये गलत सूचनाएँ किसी वास्तविकता या समाधान के रास्ते में रुकावट बन सकती है।

ऐसे में अतिचेतन मन हमें सत्य की ओर ले जा सकता है।

6. यदि चेतन मन किसी समस्या से ग्रस्त हो तो अतिचेतन मन उस समस्या पर विचार नहीं कर सकता।

यदि चेतन मन के स्तर पर कोई समस्या हमारे लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाती हैं और हम उसे सामान्य रूप से नहीं लेते तो हम अतिचेतन मन द्वारा समस्या के समाधन की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करते हैं। इस अध्याय में हम यह विचार करेंगे कि किस तरह से समस्याओं को रचनात्मक समाधान के लिए अतिचेतन मन की ओर भेजा जाए।

चिंता करना समय का दुरुपयोग है। जब हम किसी समस्या का समाधान चेतन मन के स्तर पर प्राप्त नहीं कर पाते तो हम उसे अतिचेतन मन की ओर भेज देते है और यह विश्वास रखते हैं कि अतिचेतन मन द्वारा सही समाधान दिया जाएगा। ऐसा करने के बाद हम चेतन मन के स्तर पर अपने आप को उस समस्या से अलग कर लेते हैं।

अतिचेतन मन के द्वारा हमारी समस्याओं के उत्कृष्ट समाधान हमारे पास भेजे जाते हैं तब जब हम मानसिक रूप से शांत अवस्था में होते हैं।

पुनः दोहराता हूँ कि यदि चेतन मन किसी समस्या से ग्रस्त हो तो अतिचेतन मन उस समस्या पर विचार नहीं कर सकता।

7. अतिचेतन मन के पास सारे प्रमुख परिपथ होते हैं।

एक ऐसे अनुभव की बात करते हैं जिससे आप सभी का सामना हुआ होगा।

आप सामान्यतः सुबह 4 बजे नहीं उठते हैं मगर अगले दिन से आपकी छुट्टियाँ हैं और आपको फ्लाईट पकड़ने के लिए सुबह 4 बजे उठना है। आप अलार्म लगाते है और शायद उस मित्र को भी फोन करके समय पर उठाने के लिए कहते हैं जो आपके साथ जा रहा है और बिस्तर पर करवटें बदलते समय भी आप यह सोच रहे हैं कि आपके लिए 4 बजे उठना कितना महत्वपूर्ण है। आपके चेतन मन द्वारा अवचेतन मन से संवाद द्वारा यह निवेदन किया जा रहा है कि आपको 4 बजे उठाया जाए। आप गहरी नींद में डूब जाते हैं और कुछ घंटों बाद अचानक आपकी नींद खुलती है। आपको महसूस होता है कि यह आपके जागने का नियमित समय नहीं है। आप करवट बदलकर घड़ी में देखते है और समय होता है 3:59, आप अलार्म के बारे में सोचते हैं और ठीक 4 बजे अलार्म बजता है। आप अलार्म बंद करके बिस्तर पर बैठ जाते हैं और अपनी छुट्टियों के बारे में सोचते हैं तभी आपके मित्र का फोन आ जाता है जो आपको जगाने के लिए कहता है। मगर आपको वास्तव में उठाया किसने था? आपको अतिचेतन मन ने जगाया था क्योंकि सोने से पहले आपने उसे ऐसा ही निर्देश दिया था।

अतिचेतन मन कभी भी सोता नहीं है। इसके पास सारे प्रमुख परिपथ होते हैं।

8. अतिचेतन मन हमारी स्व-अवधारणाओं के अनुरूप हमारे कार्यों और उनके प्रभावों को एकरूप करता है।

यदि हमारी स्मृति में यह संचित है कि ''मैं नामों को याद नहीं कर सकता'' तो हमारा अतिचेतन मन लोगों के नामों से संबंधित हमारी स्मृति को अवरुद्ध कर देते हैं। अर्थात् हमारी स्व-अवधारणाओं के अनुरूप हमारे कार्यों और उनके प्रभावों को एकरूप करता है।

याद रहे हमारी स्व-अवधारणाएँ जीवन में हमारे प्रदर्शन को प्रभावित करती हैं। (अध्याय 4 देखें)

यदि हम अवचेतन मन में अपने बारे में बनाए गए चित्र को बदलते नहीं हैं तो हम जीवन में उसी तरह से लगातार काम करते रहेंगे। इसे बदलने की एकमात्र कुंजी है अपने मानसिक चित्र को बदलना।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है-

कोई भी विचार चाहे वह नकारात्मक हो या सकारात्मक, यदि सतत हमारे

मन में विद्यमान रहे तो उसे अतिचेतन मन के द्वारा वास्तविकता में बदला ही जाता है।

-विलियम जेम्स

हमारे जीवन में कुछ भी घटता है उसके लिए हम अकेले ही जिम्मेदार हैं।

दुर्घटनाएँ होती तो हैं मगर उनकी संख्या बहुत ही कम होती है। जब हम अपने जीवन की हर घटना की जिम्मेदारी स्वयं लेते हैं तो जीवन अधिक बेहतर हो जाता है।

समस्या समाधान के पाँच रचनात्मक तरीके

जब हम किसी समस्या में बुरी तरह से उलझ जाते हैं और चेतन स्तर पर उनका हल खोज पाने में असमर्थ रहते हैं तो अवचेतन मन हमारी सहायता कर सकते हैं। नीचे वे पाँच तरीके दिए जा रहे है जिनका उपयोग हम अपने अतिचेतन मन द्वारा किसी समस्या का समाधान प्राप्त करने के लिए करते हैं।

1. समस्या को विस्तार से बतायें।
2. सूचनाएँ एकत्रित करें।
3. चेतन मन के स्तर पर समस्या के समाधान का प्रयास करें।
4. यदि चेतन मन द्वारा समस्या का समाधान न मिले, तो समस्या को अतिचेतन मन की ओर प्रेषित करें।
5. अपने चेतन मन को अन्यत्र व्यस्त रखें।

इस अद्भुत पुस्तक द इफेक्टिव एक्जिक्यूटिव में लेखक पीटर ड्रकर क्षमता और प्रभावशीलता में अंतर बताते हुए कहते हैं कि क्षमता विविध कामों को करने की हमारी योग्यता होती है जबकि प्रभावशीलता सही कामों को चुनने व करने की क्षमता है। वह आगे कहते है कि यदि किसी अधिकारी को 100 मामलों में निर्णय लेने हो तो उनमें से केवल पाँच ही ऐसे होंगे जो उसके व्यापार के लिए लाभदायक होंगे।

तात्पर्य यह है कि आपको किसी तरह के परिवर्तन लाने के लिए किसी सुपर कम्प्यूटर की जरूरत नहीं होती। उसी तरह हमारी हर समस्या के समाधान के लिए अतिचेतन मन की आवश्यकता नहीं होती।

स्वाध्याय से तन-मन-आत्मा स्वस्थ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

स्वाध्याय होता है परम तप, इसी से होता है पाप नष्ट।
सातिशय पुण्य का होता बंध, तन-मन-आत्मा होते स्वस्थ।। (1)

महान् उद्देश्य व पावन भाव से, एकाग्र मन व श्रद्धा भाव से।
वाचना पृच्छना व आम्नाय से, अनुचिन्तन व धर्मोपदेश से।। (2)

स्वाध्याय होता है विनम्र भाव से, सत्यग्राही व उदार भाव से।
अहंकार-ममकार रिक्त भाव से, क्रोध मान माया लोभ रिक्त से।। (3)

हटाग्रह पूर्वाग्रह रिक्त भाव से, ख्याति पूजा लाभ रहित भाव से।
हितग्रहण व अहित त्याग से, स्वाध्याय होता आत्मविशुद्धि से।। (4)

एकांत-शांत व स्वच्छ स्थान में, स्वाध्याय करणीय शुद्ध रूप से।
शब्द-अर्थ व रहस्य जानकर, स्वाध्याय करणीय प्रसन्नचित्त से।। (5)

इसी से अज्ञान होता है दूर, तनाव-उदासीनता होते दूर।
कुंठा व दीनता भी होते दूर, हैप्पी हॉर्मोन स्राव होता प्रचुर।। (6)

इसी से रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती, आधि-व्याधि भी दूर होती।
भाव-व्यवहार भी होते उत्तम, जिससे आदर्शमय होता जीवन।। (7)

आत्मविशुद्धि से होती आत्म उन्नति, परम्परा से मिलती है मुक्ति।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य मिले, इसी हेतु 'कनक' स्वाध्याय करे।। (8)

सीपुर, दिनांक 19.08.2016, प्रातः 7.51

ज्यादा पढ़ों, ज्यादा जियो

किताबें पढ़ने के शौकीन लोग अन्य ऐसे लोगों के मुकाबले अधिक जीते हैं, जो किताबें कम या बिल्कुल नहीं पढ़ते। यह बात अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में हुए एक शोध में सामने आई है। अध्ययन 50 वर्ष से अधिक के 3,635 लोगों पर हुआ। उनका करीब 12 वर्ष तक अवलोकन किया गया। अध्ययन में शामिल लोगों को तीन समूहों में बाँटा गया, पहला-जो बिल्कुल किताबें नहीं पढ़ते थे, दूसरा-जो

सप्ताह में करीब साढ़े तीन घंटे तक पढ़ते थे, तीसरा-जो सप्ताह में साढ़े तीन घंटे से अधिक समय किताब पढ़ने में बिताते थे। शोध में यह बात भी सामने आई कि पढ़ने के शौकीनों में महिलाएँ, स्नातक व अधिक आय वाले लोगों की संख्या ज्यादा थी। इसके अलावा पहले समूह की तुलना में दूसरे समूह के लोगों की असमय मृत्यु की आशंका 17 प्रतिशत कम थी, वहीं तीसरे समूह के लिए यह कमी 23 प्रतिशत थी। अध्ययन में यह भी सामने आया कि किताबों में रुचि रखने वाले लोग अन्य के मुकाबले औसतन दो साल अधिक जिए।

विपरीतताएँ व विकृतियाँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

सूक्ष्म जीव से पंचेन्द्रिय तक, हर जीव की रक्षा करनी चाहिए।
सूक्ष्म जीवों की तो करते रक्षा, किन्तु मनुष्यों की करते दुर्दशा।। (1)

हर जीवों में जिनेन्द्र कहते, किन्तु स्वधर्मी से भी करते वैरी।
हर जीवों के कर्त्ता ईश्वर कहते, किन्तु स्वधर्मी से भी करते वैरी।। (2)

पर को जानने हेतु करते प्रयत्न, किन्तु न जानते स्व-स्वरूप।
दंभपूर्ण तृष्णा को आत्मविश्वास मानते, किन्तु आत्म स्वभाव नहीं जानते।। (3)

आत्मदर्शन से परे प्रदर्शन करते, इसी हेतु करते हैं हर काम।
अष्टमद कषाय से सहित होकर (ही), करते फैशन-व्यसन व धर्म काम।। (4)

स्व-दोष तक को भी नहीं जानते, सुगुणिओं को भी दोषी बताते।
संकीर्ण स्वार्थ से तो धर्म करते, पावन भाव-व्यवहार नहीं करते।। (5)

साक्षरी बनकर राक्षस भी बनते, संस्कार (व) सदाचार से रहित होते।
आधुनिक जताते अंधविश्वासी होते, संकीर्ण-कट्टर व स्वार्थी होते।। (6)

सुख चाहते व आदर्श दिखाते, शरीर से (तो) स्थूल पाप नहीं करते।
मन-वचन व अनुमोदना से, खोटे-छोटे (व) नीच काम करते।। (7)

परनिंदा करते व अहित चाहते, स्वनिंदा-अहित से क्षुभित होते।
अन्य को सुधारते स्वयं न सुधरते, अन्य के मल मानो स्व में पोतते।। (8)

अस्त-व्यस्त व संत्रस्त भी होते, सुख-शांति व उन्नति चाहते।
परपोषण व अन्याय-अत्याचार से, महान् प्रसिद्ध व्यक्तित्व चाहते।। (9)

बबूल बोते आम के फल चाहते, जड़ काटकर पत्तियों को सींचते।
ईर्ष्या घृणा व वैरत्व करते, विश्व शांति की कामना करते।। (10)

भगवान् पूजते पावन भाव न रखते, अन्य को दुःख दे सुख चाहते।
शव को पूजते जिन्दे को मारते, संकीर्ण-कट्टर-रूढ़ि को मानते।। (11)

कृतज्ञ न होते कृतघ्नता करते, सभी से उपकार स्वयं चाहते।
स्वयं अंध होते अन्य को अंधा मानते, श्रद्धा व प्रज्ञा से रहित होते।। (12)

सरल-सहज पावन भाव-व्यवहार, हर क्षेत्र में महत्वपूर्ण होते।
सत्य-समता व शांति सहिष्णुता, सभी से महान् व श्रेय होते।। (13)

इन्हें अपनाये दुर्गुणों को त्यागे, जिससे होगा सभी का उदय।
इसी हेतु ही सूरी 'कनकनन्दी' ने, रचना की समीक्षात्मक काव्य।। (14)

सीपुर, दिनांक 15.08.2016, रात्रि 9.08

संदर्भ-

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न में व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले।। (29)

I am not subject to death; then, what should I fear death far? Nor am I subject to disease, then what can cause me pain? I am not a child; I am not an oldman; nor am I a youth; all these appetain to the flesh (matter)!

पुनः उपर्युक्त विषय का विचार-विमर्श करते हैं। पुद्गल के साथ संयोग होने के कारण जन्म-मरण रोगादि संभव है। मरणादि से बाधा होती है। शिष्य को यह जिज्ञासा प्रगट होती हैं किस-किस भावना से मैं जन्म-मरणादि से उत्पन्न कष्ट को, अभिभव को निवारण कर सकूँ? शिष्य इसका समाधान स्वयं करता है कि-

निश्चय से मेरा आत्म-स्वरूप चैतन्य शक्ति लक्षण वाला है और वह निश्चय प्राण कदापि मेरे से भिन्न नहीं हो सकता है, इसीलिये मेरा मरण संभव ही नहीं है। इसीलिये कृष्ण सर्प आदि से मैं क्यों भयभीत बनूँ? वातादि दोष से उत्पन्न रोग मेरे में

है ही नहीं है क्योंकि मैं अमूर्तिक हूँ और वातादि मूर्तिक है। इसलिये ज्वरादि विकार से मेरी व्यथा कैसे संभव है? बालादि अवस्था भी पौद्गलिक कर्म जनित है इसीलिये बालादि अवस्था से प्राप्त दुःख भी मेरा कैसे संभव है? तब मृत्यु-प्रभृति जो जीव की व्यावहारिक अवस्था देखी जाती है वह क्या है? इसका समाधान यह है कि-मृत्यु, व्याधि, बालादि है परन्तु मुझमें इसका होना अत्यंत असंभव है। भावक भव्य पुनः-पुनः स्वयं शंका समाधान करते हुए स्व-शुद्ध स्वरूप तथा कर्मजनित देहादि के स्वरूप को विचार करके स्व-स्वरूप को प्राप्त करने का एवं पर स्वरूप को त्याग करने की भावना भाता है और तदनुकूल पुरुषार्थ भी करता है।

समीक्षा–सम्यग्दर्शन होते ही जीव को स्व-पर की प्रतीति/श्रद्धा हो जाती है और ज्ञान भी भेद विज्ञान स्वरूप सम्यग्ज्ञान हो जाता है। उसे यह ज्ञान एवं भान हो जाता है कि मैं समस्त द्रव्य कर्म-भाव कर्म-नो कर्म से रहित सच्चिदानंद स्वरूप अविनाशी परमात्मा हूँ परन्तु कर्म वशात् जन्म, मृत्यु, रोग, व्याधि बालादि अवस्थाएँ होती है इसीलिये वह इन कर्मजनित अवस्थाओं से श्रद्धा रूप से अप्रभावित होता है।

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि, अण्णं परमाणुमित्तंपि।। (43)

ज्ञानी जीव का ऐसा विचार होता है कि मैं एकांकी हूँ शुद्ध हूँ अर्थात् परद्रव्य के संबंध से सर्वथा रहित हूँ, दर्शन ज्ञानमयी हूँ और सदा अरूपी हूँ अतः इन सब बाह्य पर-द्रव्यों में मेरा परमाणु मात्र भी नहीं है।

अरसमरूपमगंध अव्वत्तं चेदणागुणमसहं।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं।।

शुद्ध जीव तो ऐसा है कि जिस में न रस है, न रूप है, न गंध है और न इन्द्रियों के गोचर ही है। केवल चेतना गुण वाला है शब्द रूप भी नहीं है, जिसका किसी भी चिह्न द्वारा ग्रहण नहीं हो सकता और जिसका कोई निश्चित आकार भी नहीं है।

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो जो भावो।
एवं भणंति सुद्धा णादा जो सो दु सो चेव।।

जो प्रमत्त और अप्रमत्त इन दोनों अवस्थाओं से ऊपर उठकर केवल ज्ञायक स्वभाव को ग्रहण किये हुए हैं वह शुद्धात्मा है ऐसा शुद्धनय के जानने वाले महापुरुष कहते हैं।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससुत्तमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।।

जो आत्मा को अबद्ध स्पृष्ट, अनन्य, अविशेष आदि से अनुभव करता है वह द्रव्यश्रुत और भावश्रुतमय द्वादशांग रूप पूर्व जिनशासन कहा है।

स्व-प्रति बनी भ्रांत धारणा को निरसन करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : प्रथम तुला वंदितो....., कुहु-कुहु....., सायोनारा.....)

डजया रे! तू स्व-पर प्रकाशी बनऽऽ
स्वयं तू निःशंकी पारदर्शीऽऽ स्व-प्रति शंका निबारोऽऽ

श्रद्धा-प्रज्ञा आचरण द्वाराऽऽ स्व-भ्रांत धारणा त्यजोऽऽ
सरल-सहज-सत्य-समता सेऽऽ स्वयं को पावन निर्दोष बनाओऽऽ
नवकोटि से इसे अपनाओऽऽ...(1)...

(तथापि) तेरे प्रति कोई शंका करेऽऽ उसे निवारण हेतु प्रयत्न करऽऽ
जिससे तेरे द्वारा हो स्व-पर कल्याणऽऽ विश्व में हो ज्ञान का प्रचारऽऽ
शंका से न होता सहयोग परस्परऽऽ
शंका से होता विकर्षण परस्परऽऽ...(2)...

तेरे प्रति यदि कोई शंका/(भ्रांति) करेऽऽ तेरे ज्ञान अनुभव को न मानेगाऽऽ
जिससे तेरे द्वारा परोपकार न होगाऽऽ जिनवाणी (जैन धर्म) का प्रचार न होगाऽऽ
सत्य-समता (शांति) का न होगा प्रचारऽऽ...(3)...

सत्य ज्ञान द्वारा अन्य की भ्रांति दूरकरऽऽ आगम तर्क व उदाहरणों सेऽऽ
प्रत्यक्ष प्रमाण व गणित विज्ञान सेऽऽ प्रतिप्रश्न व कार्य-कारणों सेऽऽ
सनम्र सत्यग्राही दृढ़ता सेऽऽ
प्रयत्न करो बारम्बार सेऽऽ...(4)...

संगति-साहचर्य-निकट सम्पर्क सेऽऽ प्रायोगिक से होता सही ज्ञानऽऽ
जिससे भी भ्रांत धारणा होगी दूरऽऽ प्रकाश से यथा दूर होता तमऽऽ
सत्यमेव जयते नानृतम्ऽऽ...(5)...

नाना जीव हैं नाना विध हैं कर्मऽऽ नाना विध होते भाव-व्यवहारऽऽ
उत्तम-मध्यम-जघन्य शिष्य होतेऽऽ तदनुकूल भी प्रतीक्षा करोऽऽ
द्रव्य-क्षेत्र-काल भावानुसारऽऽ...(6)...

यदि कोई अभव्य अयोग्य व्यक्ति होऽऽ उसी से न करो उक्त व्यवहारऽऽ
उनसे माध्यस्थ रह आत्मविश्वास करऽऽ आत्महित पहले श्रेष्ठकरऽऽ
आत्म दीपक 'कनक' तू बनऽऽ...(7)...

सीपुर, दिनांक 23.08.2016, रात्रि 9.05

संदर्भ-

निःशंकित अंग का स्वरूप

सकलमनेकांतात्मकमिदमुक्तं वस्तुजातमखिलज्ञैः।
किमु सत्यमसत्यं वा न जातु शंकेति कर्त्तव्याम्।। (23)

उस सम्यक्त्व के अष्टांग में निशंकितत्व का निरूपण यहाँ कर रहे हैं। भव्य जीवों को सत्य तत्त्व के ऊपर शंका करना कर्त्तव्य नहीं हैं। यहाँ शंका का अर्थ संदेह है। निशंक अर्थात् निस्संदेहत्व है। उपर्युक्त तत्त्वों का वर्णन अखिलज्ञ अर्थात् सर्वज्ञ के द्वारा देखा हुआ है, प्रतिपादित किया गया है। सर्वज्ञ ने इन तत्त्वों को अनेकान्तात्मक दिखाया एवं बताया है। सर्वज्ञ ने समस्त द्रव्यों को अर्थात् पदार्थ समूह को अनेकान्तत्मक देखा है और सप्तभंगी से प्रतिपादित किया है। इसलिये अनेकान्तात्मक वस्तु स्वरूप में कभी भी शंका नहीं करनी चाहिए। यह वस्तु स्वरूप सत्य है या असत्य है ऐसा संदेह नहीं करना चाहिए। ''नान्यथावादिनों जिनाः'' अर्थात् वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान् अन्यथावादी नहीं होने के कारण उनके द्वारा प्रतिपादित संपूर्ण द्रव्य, तत्त्व तथा पदार्थ सत्य ही हैं। प्रत्यक्ष से दृश्यमान वस्तु से लेकर आकाश तक संपूर्ण पदार्थ समूह नित्य, अनित्य गौण मुख्य रूप से अनेकांत रूप सर्वज्ञ के द्वारा कहा गया है। मूल, अग्र, पोर, बीज, कंद, शाखा, जल आदि जीव प्रत्येक-साधारण अनंतकाय, संख्यात (असंख्यात अनंत) रूप है ऐसा सर्वज्ञ देव ने कहा है जो कि सत्य ही है। इस प्रकार विचार करके संदेह को दूर करके निशंकत्व होता है। निश्चय से सम्यक् दृष्टि सप्तभय रहित मिथ्यात्वादि सत्तावन आस्रव रहित होता है यह स्वतः सिद्ध है इसलिये निशंक होकर के प्रवर्तन करता है। ग्रंथ विस्तार भय से उसका वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी के द्वारा कहा हुआ धर्म कभी भी असत्य नहीं हो सकता है इसलिए ऐसे आप्त के द्वारा कहे हुए धर्म के ऊपर शंका नहीं करनी चाहिए क्योंकि ''**संशय आत्मा विनश्यति**'' अर्थात् संशयशील व्यक्ति विनाश को प्राप्त करता है क्योंकि संशयशील व्यक्ति की श्रद्धा कमजोर होने के कारण उसका ज्ञान कमजोर होता है और उसके कारण उसका आचरण भी दुर्बल हो जाता है। जो पहले आगम से पूर्ण श्रद्धा का विषय थे आज वह वैज्ञानिक शोध-बोध से सत्य साबित हो गये है और हो रहे हैं। जैसा कि वनस्पति एकेन्द्रीय जीव है, विश्व-प्रतिविश्व अवस्थान है, द्रव्य प्रतिद्रव्य का सद्भाव है, प्रत्येक द्रव्य सापेक्ष है द्रव्य एवं ऊर्जा अविनाशी है प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है कार्य कारण संबंध आदि अनेक विषय वैज्ञानिक परिप्रेक्ष से सिद्ध हो चुका है। उसी प्रकार ध्यान, योगासन, अहिंसा, शाकाहार, स्वप्न, शकुन, दूर-संप्रेषण अति मानवीय घटनाएँ भी सत्य है। वैज्ञानिक तथ्य से पूर्ण है। वैज्ञानिक लोग मानने लगे हैं भले कुछ विषय वैज्ञानिक दृष्टि से पूर्ण सत्य सिद्ध न हो पाया है वह भी असत्य है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। जो संख्यात असंख्यात अनंत का वर्णन जैन धर्म में पाया जाता है वह भी गणित की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण सत्य तथ्य है।

निःकांक्षित अंग का लक्षण

इहजन्मनि विभवादीनमुचक्रित्व-केशवत्वादीन्।
एकान्तवाद-दूषित-परसमयानपि न चाऽऽकांक्षेत्।। (24)

सम्यग्दृष्टि जीव इस जन्म में धन-संपत्ति आदि की तथा परलोक में चक्रवर्ती, अर्द्धचक्री आदि की पद की भी आकांक्षा नहीं करता है। इस लोक में तद्भव में धन, पुत्र, स्त्री आदि पदार्थों को तथा परभव में धर्म के प्रभाव से चक्रवर्ती, नारायण, बलभद्र, कामदेव आदि की पदवीं भी नहीं चाहता। यह व्यवहार से है। निश्चय से वह एकांतवाद से दूषित मिथ्यात्व को नहीं चाहता है। एकांतवाद से मिथ्यात्व आग्रह सो दूषित परसमय मिथ्यात्व-मिथ्याशास्त्र को वह नहीं चाहता है। सम्यग्दृष्टि को जाति, लाभ आदि अष्ट मद भी नहीं होते हैं। मद उत्पत्ति से आकांक्षा भी होती है। इसलिए सम्यग्दृष्टि को निःकांक्षित रूप द्वितीय अंग होता है।

सम्यग्दृष्टि को यह श्रद्धान हो जाता है कि मेरा शुद्ध स्व आत्म तत्त्व को छोड़कर अन्य समस्त द्रव्य धन, संपत्ति, वैभव, पुत्र, मित्र, स्त्री, कुटुम्ब पर तो हैं ही

इसके साथ-साथ मेरा शरीर पर ही है क्योंकि शरीर भी अनंतानंत पुद्गल रथ को वहन करके आगे गतिशील बनायेंगी। इसीलिए मेरा भी आह्वान है कि हे नवयुवक-नवयुवतियों! उठो, जागो अपना कर्त्तव्य संभालो। गिरते हुए धर्मरूपी रथ को अपने सुदृढ़ कंधे में धारण करके उसको सच्चे धर्म के मार्ग पर गतिशील बनाओ। प्राचीन रोग के समान कलह-फूट, वाद-विवाद को वात्सल्य रूपी अचूक औषधि से दूर करके निरोगी, स्वस्थ, सबल, सुदृढ़ गतिशील बनो। वंशजों की जलती हुई झोपड़ी से निकलकर सुरम्य गगनचुंबी शीतल सुख प्रद वात्सल्य रूपी प्रसाद का निर्माण करके सुख से निवास करो। आज देश-विदेश में, राष्ट्र-अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रेम की डोरी से बंधकर अनेक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय, संस्था समिति, संघ बन रहे हैं। तो क्या मुष्टीभर जैन धर्मावलम्बियों के मध्य में संगठन नहीं हो सकता है, अवश्य हो सकता है। मनुष्यों के लिए असंभव नाम की कोई वस्तु ही नहीं है। संगठन का बीज वात्सल्य में निहित है इसीलिये वात्सल्य को अपने हृदयरूपी उपजाऊ जमीन में डालकर गुणग्राही, उपगूहन, स्थितिकरण आदि जल खाद रश्मि से उसको अंकुरित पल्लवित, पुष्पित एवं फलित करो। आज जैन धर्मावलंबियों में संगठन के नाम पर अनेक संस्था, समिति, सभा, मिलन होते हुए भी वे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये या अपने लक्ष्य से विपरीत गमन कर रहे हैं इसलिये यह संगठन आदि रचनात्मक कार्य के साथ-साथ विध्वंसात्मक कार्य करके सुख्यात एवं कुख्यात हो रहे हैं। कुख्यात होने के कारण संकुचित मनोभाव, वात्सल्य भाव से रहित, निहित स्वार्थनिष्ठ, मतवाद, पंथवाद, जातिवाद, कुर्सीवाद, अर्थवाद, दलवाद (पार्टीबाजी) आदि है। संगठन के लिये ये सब विरोधात्मक कारण हैं इसीलिये इन विरोधी कारणों को हटाने से अत्यंत सरल एवं सहज साध्य है।

प्रभावना अंग का लक्षण

आत्मा प्रभावनीयो, रत्नत्रय तेजसा सततमेव।
दान-तपो-जिनपूजा-विद्याऽतिशयैश्च जिनधर्मः।। (30)

व्यवहारनय से सम्यग्दृष्टि भव्यों के द्वारा दान, तप, जिनपूजा अतिशय विद्या के द्वारा स्याद्वाद से अंकित जिनधर्म की प्रभावना करनी चाहिए अर्थात् अतिशय से उसको बढ़ाना चाहिए। पुनः रत्नत्रय रूपी तेज से दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक आत्मा को सतत उद्योतन करना चाहिए। प्रभावना का अर्थ है (प्र+भावना) अर्थात् प्रकृष्ट, निर्मल भावना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपों से जिनशासन का उद्योतन करना, आत्म

प्रकाशन करना प्रभावना है।

अज्ञान तिमिर व्याप्तिमपाकृत्य यथायथम्।

जिन शासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना।। (8) (रत्न.श्रा.)

अज्ञान रूपी अंधकार के विस्तार को दूर कर अपनी शक्ति के अनुसार जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना प्रभावना गुण है।

जैसे अंधकार को हटाने के लिए पहले स्वयं का दीपक जलाना अनिवार्य है। वैसे अज्ञान रूप अंधकार में धर्म की प्रभावना करनी है तो पहले अपने अज्ञान रूप अंधकार को हटाकर स्वयं को प्रकाशित करना चाहिए। कुंदकुंद स्वामी ने कहा भी है-

''आद हिदं कादव्वं यदि चेत् परहिदं कादव्वं''

पहले आत्म कल्याण करना चाहिए संभव हो तो पर का भी कल्याण करना चाहिए। महात्मा बुद्ध ने भी कहा था-

आत्म दीपो भव, पर दीपो भव। पहले आत्मा रूपी दीपक को प्रकाशित करो फिर दूसरों को भी प्रकाश दो। इसीलिए धर्म की प्रभावना करनी है तो सर्वप्रथम रत्नत्रय रूपी आध्यात्मिक ज्योति बाँटो। धर्म की प्रभावना करने के लिए दान, तपश्चरण, जिनेन्द्र पूजन को भी धर्मात्मा बनाकर धर्म की प्रभावना की जाती है।

आपके बारे में बनी गलत धारणा को बदलना जरूरी

कई बार दफ्तर में आपके बारे में लोगों की गलत धारणा बन जाती है। आप इसे तोड़ना चाहते हैं। यह जरूरी भी है, लेकिन यह आसान नहीं होता। **हार्वर्ड बिजनेस रिव्यू** से जानते हैं इसके उपाय। साथ में जानिए प्रेजेन्टेशन से पहले लोगों की धारणा को समझना कितना जरूरी है।

गलत इमेज से उबरने के कुछ तरीके

फर्स्ट इंप्रेशन बिगड़ जाए तो क्या करेंगे। क्या इसे सुधारना संभव है। यहाँ बता रहे हैं इसके चार तरीके। एक-सबसे अहम उपाय है लोगों को चकित करना। उदाहरण के तौर पर अगर आपकी इमेज है कि कभी बोलते नहीं है तो आप एक के बाद एक कमेंट कर साथियों को चौंका दीजिए। दो-एक ही बात को बार-बार दोहराये। आपके बारे में उनकी राय को गलत साबित करने के लिए आक्रामक तरीके से सबूत सामने रखें। ऐसा बार-बार करना चाहिए। तीन-जिन लोगों के मन में आपके

बारे में गलत धारणा बन गई है, उनसे नजदीकी बढ़ाना भी जरूरी है ताकि वो आपको अच्छे से जान सकें। चार-इंतजार कीजिए। कभी-कभी साथियों पर बुरे इंप्रेशन का कारण आपको पता नहीं होता। अगर आपको लगता है कि आप एकदम सही है तो इंतजार करना चाहिए। कभी न कभी तो उन्हें पता चल ही जाएगा।

(आगमोक्त-शोधपूर्ण कविता)

वैश्विक-सार्वभौम कार्य-कारण संबंध

(जैन धर्मोक्त-एकीकृत सिद्धांत)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

कारणों से कार्य सभी सम्पन्न होते, निमित्त-उपादान से संबंध होते।
योग्य अंतरंग-बहिरंग कारणों से, कार्य होते विरोध कारण अभाव से।।

शुद्ध द्रव्यों में कार्य-कारण स्वयं, बाह्य निमित्त होते हैं उदासीन।
शुद्ध द्रव्यों में होते है अनंत गुण, उनमें ही होते कार्य-कारण समन्वय।।

अवगाहन हेतु होता आकाश निमित्त, परिणमन हेतु होता काल निमित्त।
गति हेतु निमित्त है धर्मद्रव्य, स्थिति हेतु सहकारी अधर्म द्रव्य।।

शुद्ध द्रव्यों में बाधक होते है कम, बाधक से शुद्ध न होते अशुद्धमय।
बाधक से अनंत गुण न होते कम, न होते अनंत गुण कभी भी क्षीण।।

धर्म-अधर्म व आकाश काल, शुद्ध स्वरूप होते हैं त्रिकाल।
इनमें परिणमन भी शुद्ध ही होते, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप होते।।

अनादि से सर्वजीव होते अशुद्ध, आत्मसाधना से होते हैं शुद्ध।
शुद्ध जीव पुनः कभी न होते अशुद्ध, सच्चिदानंदमय अमूर्त द्रव्य।।

पुद्गल शुद्ध व अशुद्ध भी होते, शुद्ध पुद्गल ही अणु स्वरूप होते।
द्विअणुक आदि स्कंध होते अशुद्ध, शुद्ध पुनः अशुद्ध व अशुद्ध भी शुद्ध।।

जो द्रव्य जितने बन जाते हैं शुद्ध, वे द्रव्य उतने बने स्वतंत्र।
उतने अंश में गुण भी बढ़ते जाते, शुद्ध होने से पूर्ण अबाधक होते।।

हर द्रव्य में अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्व, प्रमेयत्व-अगुरुलघु व प्रदेशत्व।

चेतनत्व जीवों का विशेष गुण, मूर्तत्व होता पुद्गल का विशेष गुण।।

स्व-गुण पर्यायों में करते परिणमन, उसी हेतु होते बाह्य निमित्त कारण।
इसी से ही होते अनंत काम, सूक्ष्म-स्थूल शुद्ध-अशुद्ध काम।।

मानवकृत काम जो होते भौतिक, गृहकार्य से लेकर वैज्ञानिक तक।
ये सभी भी इसी में होते गर्भित, मानवकृत काम तो अत्यंत सीमित।।

उक्त सभी वर्णन वैश्विक व व्यापक, विज्ञान को कुछ ज्ञात अधिक अज्ञात।
एकीकृत सिद्धांत रूप में विज्ञान शोधरत, 'कनक' वर्णन किया आगम सम्मत।।

सीपुर, दिनांक 24.08.2016, मध्याह्न 12.10

सही निर्णय लेने योग्य कारक

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

निर्णय लेने योग्य कारणों को जानो...अंतरंग-बहिरंग स्वरूप मानो...
अंतरंग कारण होते यथार्थ ज्ञान...सनम्र सत्यग्राही युक्त उदार मन...(1)

ईर्ष्या-द्वेष-घृणा कामादि रहित...दबाव प्रलोभन भय तनाव मुक्त...
हिताहित विवेक कार्य-कारण युक्त...दूरदृष्टि सम्पन्न अनुभव युक्त...(2)

सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव युक्त...सर्वांगीण ज्ञान प्रत्युत्पन्न बुद्धि संयुक्त...
शांत एकांत-एकाग्रता युक्त...अनेकांत निष्णात साहचर्य सहित...(3)

क्षुधा-तृष्णा व पीड़ा रहित...प्रदूषण रहित प्राणवायु पर्याप्त...
चिन्ता उत्तेजना-भावुकता रिक्त...अति उत्साह-उदासीनता रिक्त...(4)

दुःख शोक क्रोध संताप रिक्त...हताशा आकुलता मोह रहित...
आकर्षण-विकर्षण द्वन्द्व रहित...पक्षपात रहित समता सहित...(5)

स्वप्न-शकुन अन्तःप्रज्ञा सहित...सही निर्णय होते पुण्योदय सहित...
सही निर्णय से कार्य भी सही होते...उक्त कारक युक्त 'कनक' (सही) निर्णय लेते...(6)

सीपुर, दिनांक 24.08.2016, रात्रि 10.17
(यह कविता संस्कृति नायर के लेख से भी प्रेरित है।)

अभ्यास-अनुभव से काम होते हैं विचार बिना

(कठिन काम को भी सरल बनाने के उपाय)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

डजया रे! तू स्व-साधना करऽऽऽ
सतत साधना से होगा स्वानुभवऽऽऽ स्वानुभव से (होगा) भव पारऽऽऽ...(ध्रुव)

इसी हेतु तू करो स्वाध्यायऽऽऽ मनन चिन्तन व ध्यानऽऽऽ
राग द्वेष मोह काम क्रोध त्यागोऽऽऽ संकल्प-विकल्प-संक्लेशऽऽऽ
स्वयं में ही करो निवासऽऽऽ जिया...(1)

अनादि काल से अनंत भव मेंऽऽऽ किया है राग द्वेष मोहऽऽऽ
जिससे राग द्वेषादि सहज होतेऽऽऽ इसी से तू कर विपरीतऽऽऽ
होंगे राग द्वेषादि क्षीणऽऽऽ जिया...(2)

सतत भावना साधना द्वाराऽऽऽ तन-मन-इंद्रिय होते संयम/(अभ्यास)ऽऽऽ
तंत्रिका तंत्र व दिल-दिमाग भीऽऽऽ होते नियंत्रित व अभ्यस्तऽऽऽ
सहज होते परिचालितऽऽऽ जिया...(3)

पुण्य बंध भी तदनुकूल होताऽऽऽ पाप होते संवर-निर्जरणऽऽऽ
आध्यात्मिक शक्ति भी बढ़ती जातीऽऽऽ साधना में आती है तीव्रताऽऽऽ
जिससे होती साध्य/(लक्ष्य) की प्राप्तिऽऽऽ जिया...(4)

जिससे साधना भावना तेरीऽऽऽ होगी सरल-सहज स्व-प्रवृत्तऽऽऽ
जिससे समता शांति बढ़ेगीऽऽऽ विभाव भाव होंगे नियंत्रितऽऽऽ
(स्व) स्वभाव में स्वतः प्रवृत्तऽऽऽ जिया...(5)

यथा अभ्यस्त मातृभाषा बोलनाऽऽऽ रक्त संचार श्वास क्रियाऽऽऽ
अभ्यासगत वाद्य यंत्र भी बजानाऽऽऽ नाचना गाना यंत्र चलानाऽऽऽ
अभ्यास से सरल-सहजऽऽऽ
अनाभ्यास से न होता सहजऽऽऽ जिया...(6)

जो कार्य बिना विचार प्रयत्न सेऽऽऽ होते हैं सहज-सरलऽऽऽ
वे सभी होते अभ्यास से सिद्धऽऽऽ नहीं करना पड़ता विचारऽऽऽ

विचारातित भी होता ध्यानऽऽऽ
अविचार भी होता शुक्ल ध्यानऽऽऽ जिया...(7)

प्राथमिक अवस्था में करना होगाऽऽऽ सतत अभ्यास दृढ़ता सेऽऽऽ
आयेंगे कुछ विघ्न-बाधा आदिऽऽऽ उसे करना होगा दूर साधना सेऽऽऽ
साधना होगी (अतः) सरल निरंतरऽऽऽ जिया...(8)

आगम व विज्ञान से भी हो रहा सिद्धऽऽऽ तेरा अनुभव अनेक प्रसिद्धऽऽऽ
इसी से तू शिक्षा लेकर करो प्रयत्नऽऽऽ जिससे तेरी साधना होगी सिद्धऽऽऽ
'कनक' बनो शुद्ध-बुद्ध-प्रसिद्धऽऽऽ जिया...(9)

सीपुर, दिनांक 17.08.2016, प्रातः 7.55

(यह कविता ''आपके अवचेतन मन की शक्ति से आगे'' 'सी जेम्स जेनसन' से भी प्रभावित।)

संदर्भ-

आदतों के प्रतिमानः पहले हम आदतें बनाते हैं, फिर आदतें हमें बनाती हैं

मैं एक बार फिर इस अध्याय के शीर्षक को दोहराता हूँ, ''पहले हम आदतें बनाते हैं, फिर आदतें हमें बनाती हैं।'' स्व-अवधारणाओं की ही तरह जब हम जन्म लेते है तो हमारे भीतर किसी भी आदत का विकास नहीं हुआ होता है। हमारी सारी आदतें विकसित की जाती हैं और एक बार ये आदतें विकसित हो जाती हैं तो उनमें से कुछ अधिक विकसित आदतें हमारे मूल व्यवहार में शामिल हो जाती हैं और वातावरण के प्रति हमारी प्रतिक्रिया और आंतरिक धारणा का रूप ले लेती है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि किसी आदत के साथ जुड़े रहना यह हमारे चुनाव पर निर्भर होता है। ऐसी आदतें जो हमारे लिए उपयोगी है और हमें सहायता करती है उन्हें सोद्देश्य अभ्यास में लाया जाना चाहिए और उन पर ध्यान देना चाहिए। उसी तरह यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि जो आदतें हमारे लिए उपयोगी नहीं रह जाती, उन्हें बदलने या त्यागने की क्षमता भी हमारे भीतर ही है।

हमारी आदतों के दो प्रकार होते हैं-सकारात्मक और नकारात्मक। सकारात्मक

आदतों में चलना, बात करना, कार चलाना, खाना आदि जैसी हजारों बातों को लिया जाता है। नकारात्मक आदतों में हमेशा डर का भाव छिपा रहता है। इस अध्याय में हम इसके बारे में और विस्तार से बात करेंगे।

आदतों के प्रतिमान या पैटर्न बढ़िया होते हैं क्योंकि वे हमें एक साथ कई काम करने की अनुमति देते हैं। चूँकि हम अपने चेतन मन में एक बार में एक ही विचार को धारण कर सकते हैं अतः आदतों के प्रतिमान न होने पर हम एक साथ या एक के बाद एक कई काम नहीं कर सकते।

उदाहरण के लिए कार चलाने की बात करें। जब आपने पहली बार कार चलाना सीखा था तो आपने कार में कूदकर चाबी लगाकर कार चालू करके और ब्रेक से पाँव हटाकर कार आगे नहीं बढ़ाई थी। आपको क्या करना है यह पता नहीं था। अतः अपने माता-पिता की सलाह लेकर और ड्राइविंग के सारे नियम जानने के बाद ही आपने कार चलाना सीखा। मगर इसमें भी कुछ समय लगा, कई गलतियाँ हुई और ध्यानपूर्वक इसे सीखने की जरूरत पड़ी। पहली बार कार चलाते हुए मोबाइल पर बात करते समय या किसी किताब को टेप पर सुनते हुए भी आपको दिक्कतों का सामना करना पड़ा होगा। यह सब करते समय आपको ओवरस्टीयरिंग, जोर से ब्रेक लगाना, ढलान पर कार पार्क करने में गलती आदि से बचने के लिए बहुत प्रयास व अभ्यास की जरूरत पड़ी होगी। (मेरी बेटियाँ जूली और जिल जब भी मेरे द्वारा कराए गए उन अभ्यासों से नाराज होंगी।)

चलिए आपको मेरी बात की दिशा समझ में आ गई। हम आदतों को विकसित करने के लिए निम्न बातों का अनुसरण करते हैं-

1. संबंधित जानकारी (डेटा इनपुट), 2. अभ्यास या दोहराव।

स्नायुतंत्रीय दृष्टि से इसका अर्थ समझाने के लिए लेखक डैनियल कोएल अपनी पुस्तक द टैलेंड कोड में कहते है कि-

टेलेंट कोड क्रांतिकारी वैज्ञानिक खोज के आधार पर निर्मित होता है जिसमें मायलिन नामक एक तंत्रिकीय विसंवाहक (न्यूरल इन्सुलेटर) शामिल रहता है। इसे कुछ तंत्रिकातंत्र विशेषज्ञ कौशल प्राप्ति का अचूक साधन मानते हैं। **इसीलिए मनुष्य द्वारा अर्जित कोई भी कौशल चाहे वह बेसबाल खेलना हो या बाख का खेल हो, इसके लिए तंत्रिका तंतुओं की एक महीन श्रृंखला तैयार होती है जिसमें**

सूक्ष्म विद्युतीय आवेग उपस्थित रहते हैं-ठीक वैसे ही जैसे किसी विद्युत परिपथ से कोई संकेत प्रवाहित हो रहा हो। मायलिन का कार्य सारे तंतुओं को एक दिशा में जोड़े रखना है (जैसे कि हम किसी रबर टेप द्वारा ताँबे के तारों को जोड़ने का काम करते हैं।) ताकि विद्युत आवेग का रिसाव न हो और सारे संकेत (सिग्नल) शक्तिशाली और तीव्र बने रहें। हम किसी कौशल का जितना अधिक अभ्यास करते हैं अर्थात् किसी परिपथ को जितना अधिक संचारित करते हैं, हमारा मायलिन उस परिपथ के चारों ओर आवेगों को जोड़ने का काम करता रहता है। ये आवेग जितने अधिक होंगे, हमारा कौशल उतना ही अधिक बढ़ेगा। हरेक आवेग कुछ और कौशल को जोड़ता जाएगा। मायलिन जितना अधिक सघन होगा, उतना ही वह रोधक होगा। इसी के कारण हमारे विचार और कामों में गति आती जाएगी।

कोएल आगे कहते है-यह परिवर्तन तीन साधारण तथ्यों पर आधारित होता है-1. मानव का हरेक विचार, कार्य और भावना वास्तव में तंत्रिका तंतुओं के परिपथ से निकालने वाली न्यूरान की श्रंखला होती है। 2. मायलिन किसी इन्सुलेटर की तरह कार्य करता है जो तंत्रिका तंतुओं को आपस में जोड़कर उनकी शक्ति, गति और सटीकता को बढ़ाने का काम करता है। 3. हम इस परिपथ को जितना अधिक सक्रिय बनाते हैं, मायलिन की परत मोटी होती जाती है और परिपथ बड़ा हो जाता है। परिणामस्वरूप हमारे विचार और कार्य अधिक तीव्र, तेज और शक्तिशाली हो जाते हैं।

हमारे वाहन चालन के उदाहरण में डाटा इनपुट के रूप में वे सारे निर्देश थे जो हमें अपने पालकों, प्रशिक्षक, बड़े भाई-बहनों या मित्रों से मिले थे।

दोहराव का कारण स्वयं वर्णित है। हम लगातार अभ्यास करते रहते हैं और समय के साथ यह हमारी आदत बन जाती है। हमें कैसे पता चलेगा कि कोई काम कब आदत बन गई है? जब वह काम करते समय हमें उसके बारे में सचेत होकर सोचना नहीं पड़ेगा, तब हम मानेंगे कि वह आदत बन गई है। हमें मिली सूचनाएँ अभ्यास के द्वारा हमारे अवचेतन में संग्रहित हो जाती है अर्थात् हम सब एक साथ कई काम कर सकते है अर्थात् बिना निर्देशों के कार चला सकते हैं, साथी से बात कर सकते हैं, फोन पर बात कर सकते हैं और रेडियो पर कोई कार्यक्रम सुन सकते हैं। आप कभी ऐसे

रेस्टोरेंट में गए है जहाँ पियानो वादन होता है? आपने देखा होगा कि पियानो वादक अपने ग्राहक से बात करते समय भी सुंदर धुन बजा रहा होता है। वादक स्वयं किसी व्यक्ति से बातचीत में मशगूल है मगर उसकी उंगलियाँ पियानों के की-बोर्ड पर बिना कोई गलती किए फिसलती जा रही है। यह कहने की जरूरत ही नहीं कि पियानो वादक ने यह कौशल पहले ही प्रयास से अर्जित किया होगा। उसने धुन को गहराई से समझा होगा, सुना होगा (बिना किसी से बात किए) और इसका लगातार अभ्यास तब तक किया होगा जब तक वह उस धुन को प्रवाह में बजा न ले और उसे बजाने के लिए उसे सोचना न पड़े। तब यह उसकी आदत में आ चुका होगा।

इसी उदाहरण में यदि उसे कोई ऐसी धुन दी जाए जिसे उसने पहले न बजाया हो तो वह उस धुन को पढ़कर, देखकर पियानो पर बजा लेगी मगर उस समय वह किसी से बात नहीं कर सकेगी क्योंकि उसका पूरा ध्यान उस धुन को पढ़ने में होगा।

यही कुछ टाईपिंग सीखते समय भी होता है। पहले हम निर्देशों के अनुसार टाईपिंग सीखते हैं, उसका अभ्यास करते हैं और फिर हम टाईप करने लगते हैं।

पहले कहीं बात को पुनः दोहराते हैं कि आदतों के प्रतिमान हमें एक साथ कई काम करने की अनुमति देते हैं, वह भी बिना किसी सचेत विचार के। पर अब हम विचार करेंगे कि कुछ आदतें विशेषतः नकारात्मक आदतें किस तरह आपके व्यवहार को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती हैं और कुछ निर्देश हमारे लिए किस तरह हानिकारक हो सकते हैं।

मुझे बुरी आदतों के बारे में एक टिप्पणी करने दें। बुरी आदतें बस बुरी आदतें होती हैं जिन्हें समय के साथ व्यक्ति विकसित करता है और अब उन्हें चाहकर भी दूर नहीं कर पाता है। पेशेवर लोग इसे लत या व्यसन भी कहेंगे। मगर अपने आप को किसी बुरी आदत की पकड़ से छुड़ाने के लिए भी हम वही तरीके और तकनीके इस्तेमाल करते हैं जिन्हें इस पुस्तक में अध्याय 8 में अभिपुष्टि और इसकी तकनीके शीर्षक में दिया गया है। आधार यह है कि अब आपको किसी भी पुराने या बेकार विश्वास, व्यवहार या आदत, जिसके आप अब तक आदी थे, का गुलाम बने रहने की आवश्यकता नहीं है। आप जल्दी ही जानेंगे कि स्वयं को इस बोझ या कबाड़ से दूर कैसे करे जिसे आप अपने जीवन के अब तक के सफर में इकट्ठा कर लाए हैं।

यह काम ऐसा कठिन नहीं है जिसे आप कर ही नहीं सकते या जिसे करने के लिए आपको तिब्बत की गुफाओं में तपस्या कर रहे किसी साधु के मार्गदर्शन की आवश्यकता होगी।

अब नकारात्मक आदतों के नमूनों पर आते हैं।

हम पहले भी कह चुके हैं कि नकारात्मक आदतों के नमूनों में डर का तत्त्व शामिल रहता है और अधिकांश मामलों में हमारे भीतर की नकारात्मक आदतें हमारे अंदर तब से डाली जाती है जब हम 6 वर्ष से कम आयु के होते हैं। हम इस आदत में कैसे पड़े, यह हमारी स्मृति से धुँधला चुका होता है। चूँकि हमें यह नहीं पता होता कि ये डर की आदतें हमने कैसे विकसित की, अतः हमारे भविष्य के निर्णय और व्यवहार इससे प्रभावित होते हैं। 6 वर्ष की आयु के बाद हो सकता है हमारे मन में किसी खास वस्तु या व्यक्ति के प्रति डर उत्पन्न हो जाए। मगर इस डर का कारण या घटना की स्मृति बिलकुल ताजा ही होगी। ऐसी स्थिति में हमारी परिभाषा के अनुसार यह आदत नकारात्मक आदत के नमूने की श्रेणी में नहीं आएगी।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।

स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपिन पश्यति।। (41)

He who has firmly established himself in the knowledge of the self, such a one does not speak while speaking, does not move while moving and does not see while seeing!

स्थिरीकृतात्मतत्वो दृढ़प्रतीतिगोचरीकृतस्वस्वरूपो योगी संस्कारवशात्परोपरोधेन बृवन्नपि धर्मादिकं भाषमाणोऽपि न केवलं योगेन तिष्ठति ह्यपिशब्दार्थः। न ब्रुते हि न भाषत एव। तत्राभिमुख्याभावात्।

''आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।

कुर्यादर्थवशात्किंचिद्वाक्कायाभ्यामतत्परः''।। (50)

तथा भोजनार्थव्रजन्नपि न व्रजत्यपि तथा।

सिद्धप्रतिमादिकावलोकयन्नपि नावलोकयत्येव तुरेवार्थः।।

स्व-स्व आवश्यक करणीय भोजनादि यत्किंचित् श्रावक से साधु प्राप्त करता है उससे भी वह खेद को प्राप्त होता है। आवश्यकतानुसार श्रावक को कुछ कहकर मुनि उसे तत्क्षण भूल जाता है। श्रावक मुनि को कुछ पूछने पर कुछ नहीं है ऐसे कहकर उससे भी विरक्त हो जाते हैं। यथा-जिस योगी ने स्वस्वरूप में स्वयं के चित्त

को स्थिर कर लिया है ऐसा योगी संस्कार वशात् दूसरों के अनुरोध से धर्मादि संबंधी कुछ उपदेश करते हैं तथापि उपदेश के बाद पुनः वे स्व-स्वरूप में आ जाते हैं क्योंकि उपदेश करना उनकी मुख्यता नहीं है। समाधि तंत्र में ग्रंथ कर्ता ने कहा भी है-

आत्माकांक्षी योगियों को आत्म ध्यान से भिन्न किसी भी कार्य को चिरकाल तक धारण नहीं करना चाहिए। किसी कारण वशात् वचन और काय से कार्य करना पड़े तो उसमें आसक्त न होवे।

इसी प्रकार साधु शरीर को धारण के लिए भोजन करते हैं और उसके लिए गमन करने पर भी उसमें आसक्त न होने के कारण उनका गमन के लिए नहीं होता है। इसी प्रकार सिद्ध प्रतिमा आदि के दर्शन करते हैं तथापि उनका दर्शन अवलोकन नहीं है।

समीक्षा-यह प्रायोगिक मनोवैज्ञानिक सिद्ध सिद्धांत है कि जब किसी व्यक्ति का चित्त एक विषय में स्थिर हो जाता है तब उसके आस-पास जो घटनाएँ घटती है उसे न वह देख पाता है न सुन पाता है भले उसकी आँखें कान खुले रहते हैं। सामान्य व्यक्तियों को जो ज्ञान होता है उसके लिए लब्धि उपयोग एवं उपकरण चाहिए। जब कोई एक व्यक्ति एक वस्तु को देखता है तब वह अपनी लब्धि को उपकरण के माध्यम से उस वस्तु में अपना उपयोग लगाता है। उस समय उपयोग क्षेत्र से बाह्य क्षेत्र में जो वस्तु है उसे वह नहीं देख सकता है। कदाचित् कोई वस्तु उसकी दृष्टि क्षेत्र के मध्य में आ जावे तो भी अच्छा पूर्ण ज्ञान उसको नहीं होगा। इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र में भी जान लेना चाहिए। अर्थात् जो स्व-आत्मा में रुचि लेता है, लीन होता है उसे अन्य वस्तु का ज्ञान, भान नहीं होता है।

किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्केवेत्यविशेषयन्।
स्वेदहमपि नावैति योगि योगपरायणः।। (42)

He who has firmly established himself in the knowledge of the self, such a one does not speak while speaking, does not move while moving and does not see while seeing!

तदा च परमैकाग्रयाद् बहिरर्थेषु सत्स्वपि।
अन्यन्न किचनाभाति, स्वमेवात्मनि पश्यतः।। (तत्त्वानुशासनम्)

यह अध्यात्म अनुभूयमान तत्त्व का रूप क्या है? किस प्रकार का है? किसके समान है? इसका स्वामी कौन है? किसके हैं? किसका है? किसके निमित्त से है?

कहाँ उसकी स्थिति है? किसके द्वारा है? इत्यादि विशेषणों से विचार करता हुआ योग परायण योगी समरसी भाव से सम्पन्न योगी स्वदेह को भी अनुभव नहीं करता है तब फिर अन्य वस्तु की बात ही क्या है? आत्मानुशासन में कहा भी है जिस समय योगी योग में तत्पर हो जाता है उस समय वह स्वयं को छोड़कर अन्य को नहीं जानता है, नहीं देखता है न ही अनुभव करता है।

स्थिरता का कारण

यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरूते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र न गच्छति।। (43)

He who abides in a place, becomes attached to the place he who takes a liking to a locality does not give it up to go elswhere!

शिष्य विस्मय होकर प्रश्न करता है कि हे गुरुदेव! यह अवस्थान्तर कैसे संभव होती है? गुरु कहते हैं कि हे धीमान्! समझो-

जो व्यक्ति जिस ग्राम, नगरादि में स्वार्थ से निर्बन्ध होकर निवास करता है उसमें उसकी चित्त रति को प्राप्त कर लेती है और अन्य स्थान से निवृत्त हो जाती है। जो वहाँ पर रुचि से निवास करता है वह अन्यत्र नहीं जाता है; यह अनुभव जन्य प्रसिद्ध प्रतिती है। इससे सिद्ध होता है-जो योगी स्व-आत्मा में निवास करता है और अभूतपूर्व आनंद का अनुभव करता है वह अन्यत्र अर्थात् विषय भोग में गमन नहीं करता है।

आत्म-स्थिरता का फल

अगच्छं स्तद्विशेषाणमनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते।। (44)

The ascetic, not stiring out of his self and not attending to the particular natures of the not-self, does not become their enjoyer; by not enjoying the not-self he is not bound by karmas, but becomes released from them.

जब योगी अन्य बाह्य वस्तु में प्रवृत्ति नहीं करता है तब वह क्या होता है? इसे बताते हैं-

जो योगी स्व-आत्म तत्त्व में स्थिर हो जाता है वह स्व-आत्म से भिन्न अन्य

देहादि की सुंदरता-असुंदरता रूपी धर्म से निवृत्त हो जाता है। जब उनसे निवृत्त हो जाता है उस संबंधी वह अनभिज्ञ हो जाता है जिससे उस संबंधी राग-द्वेष से उत्पन्न कर्मों से नहीं बँधता है तब वह व्रतादि अनुष्ठान से कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है।

समीक्षा-इसी श्लोक में आचार्यश्री ने 43वाँ श्लोक में जिस विषय की प्रतिपादन किया था उसी विषय का विशेष वर्णन करते हुए उसका फल भी बताया है। जब योगी स्व-आत्मा में रति करता हुआ अन्य से निवृत्त हो जाता है तब वह पर जनित राग-द्वेष से भी निवृत्त होता हुआ राग-द्वेष से बँधने वाले कर्मों से भी निवृत्त हो जाता है। अमृतचन्द्र सूरी ने कहा भी है-

एकं ज्ञायकभावनिर्भरमहास्वादं समासादयन्,
स्वादन्द्वन्दमयं विधातुमसहः स्वां वस्तुवृत्तिं विदन्।
आत्मात्मानुभवानभावविवभो भ्रस्यद्विशेषोदयं,
सामान्यं कलयत्किलवे सकलं ज्ञानं नयत्येकताम्।।

'यह आत्मा-ज्ञायक भाव से परिपूर्ण ज्ञान के एक महास्वाद को लेता हुआ और दो भिन्न वस्तुओं में मिले हुए मिश्र स्वाद को लेने में असमर्थ किन्तु अपनी वस्तु की प्रवृत्ति को जानता है-अनुभव करता है क्योंकि वह आत्मा अपने आत्मानुभव के प्रभाव से विवश होता हुआ और ज्ञान के विशेषों के उदय को गौण करता हुआ मात्र सामान्य ज्ञान का अभ्यास करता है और सर्वज्ञान की एकता को प्राप्त करता है। ज्ञानी के आत्म स्वरूप के मधुर रस स्वाद के सामने अन्य सब रस फीके हो जाते हैं पदार्थों का भेदभाव मिट जाता है। ज्ञान के विशेष (भेद) ज्ञेयों के निमित्त से होते हैं। सो जब ज्ञान सामान्य का आस्वाद होने लगता है तब ज्ञान के विशेष स्वयं गौण हो जाते हैं किन्तु एक ज्ञान ही ज्ञेय रह जाता है। तब आत्मा अद्वैत भाव को प्राप्त होता है तब कर्म बंधन न होकर केवल कर्म निर्जरा ही होती है।'

लक्ष्यानुसार मिलते...परिणाम

(महान्-छोटे व खोटे लक्ष्य के...परिणाम)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

लक्ष्यानुसार सदा विचार/(कल्पना) होता...विचारानुसार भावना होती...

भावानुसार व्यवहार होता...व्यवहारानुसार फल मिलता...(स्थायी)...

महान् लक्ष्य से होता महान् विचार...महान् विचार से महान् भावना...
महान् भावना से होता महान् काम...महान् काम का फल महान्...

लक्ष्यानुसार शक्ति करती काम...लक्ष्यानुसार (यथा) तीर करे प्रहार...
दृष्टि के अनुसार होती सृष्टि...जई मई तई होदि गति...(1)...

लक्ष्य छोटा तो होता विचार छोटा...छोटा विचार से भावना तथा/(खोटी)...
छोटी भावना से काम भी छोटा...छोटा काम से फल भी तथा/(खोटा)...

खोटा लक्ष्य तो विचार खोटा...खोटा विचार से भावना तथा...
खोटी भावना से काम भी खोटा...खोटा काम से फल भी तथा...(2)...

बीजानुसार यथा अंकुर होता...अंकुर अनुसार वृक्ष है होता...
वृक्ष में आते फूल व फल...आम से आम तो निम्ब से निम्ब...

टार्च का प्रकाश यथा फैलता...दिशा व डिग्री अनुसार फैलता...
लक्ष्यानुसार होते विचार आदि...महान् छोटा व खोटा आदि...(3)...

लक्ष्यादि हेतु न लगते धन-जन...तथापि मिलते हैं फल महान्...
सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि है दृष्टांत...आत्मोपलब्धि है 'कनक' का लक्ष्य...(4)...

सीपुर, दिनांक 14.08.2016, प्रातः 7.38

(मेरी आत्म विजय की भावना)

अन्य को परास्त किये बिना विजयी बनूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

अन्य को हराये बिना (मैं) जीतना चाहता हूँ।
अंतरंग शत्रुओं का (मैं) नाश चाहता हूँ।। (1)

अन्य को हराया होगा अनंत भी बार।
((किन्तु) अंतरंग शत्रु से हारा अनंत भी बार)
किन्तु उस जीत में हारा स्वयं के ही द्वारा।। (2)

अन्य जीवों को हराने में होते राग-द्वेष-मोह।

ईष्या घृणा पक्षपात हिंसादि भय या स्नेह।। (3)

इसी से मैं पर विजयी से बना स्व से पराजित।
इसी से संसार में भ्रमण कर रहा हूँ अभी तक।। (4)

अन्य को परास्त कर कोई भले बने चक्रवर्ती।
न्याय से भी पर-परास्त से न मिलती है मुक्ति।। (5)

बाहुबली रामचन्द्र पाण्डवों की जीत से।
न्याय पक्ष की तो जीत हुई न मोक्ष इसी से।। (6)

तथाहि खेल या राजनीति वाद-विवाद में।
प्रतिपक्ष को जीतने से भी न मोक्ष इसी से।। (7)

इसी में भी होते हैं दोष यथायोग्य (आंशिक) उपरोक्त।
इसी हेतु ही विजयी बाहुबली बने विरक्त।। (8)

विजयी भरत को भी राज्य से न मिला मोक्ष।
मोक्ष हेतु भरत भी अंत में बने विरक्त।। (9)

इसी हेतु मैं स्वयं को विजयी बनाना चाहता हूँ।
(स्व) अंतरंग को नाशकर विजय चाहता हूँ।। (10)

पर जय से आध्यात्मिक शक्ति न होती अनंत।
आत्म जय से आध्यात्मिक शक्ति बनती अनंत।। (11)

अनंत आत्मिक शक्ति मुझे प्राप्त करना अभी।
अतः 'कनक' पर को परास्त करना त्यागे सभी।। (12)

सीपुर, दिनांक 20.08.2016, रात्रि 9.22

संदर्भ-

शत्रु से भी क्रोध करना आत्मघात

विराधकः कथं हंत्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यंगुलं पातयत्पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते।। (10)

Why should the evil-doer becomes angry with him who takes revenge on him? He who pulls down the trangura with both

his feet is himself felled to the ground through its instrumentality! This is but just! It therefore does not become one to get angry!

अनुवाद-दृष्टान्त के माध्यम से अहित वर्ग का प्रकाशन वहाँ कर रहे हैं। अपकार करने वालों के ऊपर व्यक्ति प्रकोपित होते हैं। वे नहीं जानते हैं कि- जो जिस प्रकार सुख या दुःख प्राप्त करता है वह उसके द्वारा पूर्व में किया हुआ दूसरों के लिए सुख-दुःख का प्रतिफल ही है। जो जैसा करता है वह वैसा ही प्राप्त करता है यह मार्ग सुनिश्चित है।

उपर्युक्त विषय को दृष्टांत के माध्यम से बता रहे हैं। मिट्टी खोदने के लिए त्रांगुरा एक यंत्र होता है जो मिट्टी खोदने के लिए इस अस्त्र का प्रयोग करता है वह उस अस्त्र के साथ-साथ स्वयं भी नीचे जाता है।

समीक्षा-अज्ञानी मोही जीव दूसरे अपकारी व्यक्तियों को अपना शत्रु मान लेता है। शत्रु मानकर उन्हें कष्ट देता है परन्तु उसे ज्ञात नहीं कि जो कुछ कष्ट शत्रु के द्वारा उसे मिल रहा है वह कष्ट उसके द्वारा ही पूर्व निर्मित है। उसने जो पूर्व में दूसरों को कष्ट दिया था वही कष्ट आज परिवर्तन रूप में उस शत्रु के माध्यम से उसे मिल रहा है। यदि वह पूर्व में दूसरों को कष्ट नहीं देता तो उसे भी कोई कष्ट देने में समर्थ नहीं होता।

''स्वयं कृतं कर्मयदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।''

Whatever karmas you have performed previously you experience their fruits, whether good or evil.

इस जीव ने पूर्व में जो शुभ या अशुभ पुरुषार्थ किया था, उसके फलस्वरूप वह पुरुषार्थ का परिपाक रूप शुभ-अशुभ रूप भाग्य का उपभोग करता है अर्थात् भूत का पुरुषार्थ वर्तमान का भाग्य एवं वर्तमान का पुरुषार्थ भविष्य के भाग्य रूप से परिणमन करता है, जैसे बीज से वृक्ष एवं वृक्ष से बीज की तरह-जैसा बायेंगे वैसा पायेंगे।

''As we sow, so we reap.''

पुरुषार्थ एवं भाग्य में कारण कार्य भाव है-

''साधारणौ सकलजन्तुषु वृद्धिनाशौ,
तज्जन्मान्तरार्जित शुभाशुभ कर्म योगात्।

धीमान् स यः सुगति साधन वृद्धिनाशः,

तद्व्यत्ययाद्विगतधीरपरोऽभ्यधायि''।। (148) (आत्मानुशासन)

Rise and fall are common to all things according to the meritorious and demeritorious karmas acquired in past life. That man is wise who for attaning a good next condition of existence increases (his merits) and removes his (demerits). The man opposed to this (view) is a fool. This has been said.

समस्त प्राणियों में समान रूप से पूर्वजन्म में संचित किए गए पुण्य एवं पापरूपी भाग्य के उदय से आयु, शरीर एवम् धन, संपत्ति आदि की वृद्धि और उनका नाश होता है। यदि इस प्रकार कहा जाय कि दैव की सिद्धि पूर्व दैव से ही होती है अर्थात् पहले-पहले के भाग्य से ही आगे-आगे का भाग्य बनता चला जाता है, तब तो इस प्रकार से भाग्य की परम्परा चलती रहने से कभी भी किसी को मोक्ष नहीं हो सकेगा और जो इस भाग्य परम्परा से चलता रहता है, वह ''तद्व्यत्यायाद्विगतधीरपरोऽभ्यधायी'' दुर्गति (भाग्य) के साधनभूत वृद्धि को (पुरुषार्थ) अपनाने से निर्बुद्धि कहा जाता है। जो अभव्य एवं दूरानुदूर भव्य है जिनको कभी भी मोक्ष नहीं मिलता है, वह अनादि पूर्व परम्परा दैव से अनंत परम्परा दैव के अधीन रहकर भाग्य की आधीनता से स्वाधीन कभी नहीं हो सकता किन्तु इससे विपरीत ''धीमान् स यः सुगतिसाधन वृद्धिनाशः'' सुगति अर्थात् मोक्ष की सिद्धि करने और वृद्धि एवम् भाग्य का नाश करने के लिए पुरुषार्थ को अपनाता है, वह बुद्धिमान, भव्य, पुरुषार्थी है, उसका भाग्य अनादि एवं सांत है। यदि दैव से ही सब कुछ मान लिया जायेगा तो भाग्य की उत्पत्ति को रोकने के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है, वह तो निष्फल हो जायेगा। यदि पुरुषार्थ सफलता के निमित्त है, ऐसा कहा जाए तो पुरुषार्थ से ही भाग्य का विनाश होता है। इससे मोक्ष की प्रसिद्धि होने से पुरुषार्थ सफल हो जाएगा, सो इस प्रकार का कथन ''दैवादेवसर्वः इति या प्रतिता सा हीयते'' दैव से ही सब कुछ होता है इस कथन का निवारण हो जाता है, क्योंकि इस कथन से पुरुषार्थ भी कार्यकारी सिद्ध हो जाता है। यदि कोई भाग्य की कृतज्ञता प्रदर्शन करने के लिए मानेगा तो मोक्ष का कारणभूत जो पुरुषार्थ होता है, वह भी तो भाग्य का कारण होता है। अतः परम्परा से ऐसा सम्बन्ध होने से मुक्ति भी भाग्य के कारण है, तब तो अनेकांतवाद होने से सत्य हुआ जो कि वस्तुस्थिति है।

संसार का मूल कारण

रागद्वेष-द्वयी-दीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा।

अज्ञानात्सुचिरंजीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।। (11)

Tied to the long rope intwined with [the strand of] attachments and aversions, the soul is whirled about in the ocean of Samsara (transmigratary existence) for immeasurable time, led by ignarance!

''यत्र रागः पदं धत्ते, द्वेषस्तत्रेति निश्चयः।

उभावेतो समालम्ब्य, विक्रमत्यधिकं मनः।।''

शिष्य प्रश्न करता है कि गुरुदेव! पत्नी आदि इष्ट में राग और शत्रु आदि अनिष्ट में द्वेष करता हुआ यह जीव क्या आत्मा का हित करता है अथवा उसका कौनसा कार्य होता है? इसका समाधान आचार्य देते हैं-

इष्ट वस्तु के प्रति राग और अनिष्ट वस्तु के प्रति द्वेष करता हुआ यह जीव दुःख के कारणभूत कष्ट से पार होने योग्य द्रव्यादि पंच प्रकार के भवरूपी समुद्र में सुदीर्घ काल तक परिभ्रमण करता है। शक्ति-व्यक्ति रूप से दोनों राग-द्वेष की प्रवृत्ति बताने के लिए द्वयी ग्रहण किया गया है और शेष दोष इन दोनों दोषों से प्रतिबद्ध है। कहा भी है-

जहाँ राग अपने पद को धारण करता है वहाँ निश्चय से द्वेष होगा ही। दोनों मिलकर मन को अत्यधिक विकार युक्त कर देते हैं। और कहा भी-

आत्मनि सति परसंज्ञा स्व-पर-विभागात्परिग्रहद्वेषौ।

अनयोः संप्रतिबद्धाः सर्वे दोषाश्च जायंते।।

क्योंकि जहाँ आत्मा में अपनेपन की कल्पना है वहाँ पर संज्ञा रहती ही है। यह मेरा है और यह दूसरे का है इस तरह का स्व और पर का विभाग है तो वहाँ पर नियम से राग-द्वेष है और जहाँ पर दोनों रहते हैं वहाँ पर अन्य दोष अनायास ही उग जाते हैं, क्योंकि अन्य दोषों की उत्पत्ति का मूल कारण राग-द्वेष है, सभी दोष राग और द्वेष से परिपूर्ण हैं। जीव की यह राग-द्वेष परम्परा ही संसार परिभ्रमण का कारण है। इसी से आचार्य कुंदकुंद ने संसार भ्रमण के कारण राग-द्वेष ही बतलाए हैं। जैसा कि पंचास्तिकाय के निम्न पद्यों से प्रकट है-

''जो खलु संसारत्थो जीवो तत्तो दु होदि परिणामो।

परिणामादो कम्मं कम्मादो हवदि गदिसु गदी।।
गदिमधिगदस्स देहो देहादो इन्द्रियाणि जायंते।
ते हिदु विसय गहणं तत्तो रागो वा दोसो वा।।
जायदि जीवस्सेकं भावो संसार-चक्क-वालम्मि।
इदि जिणवरेहिं भणियं अणाइणिहणे सणिहणे वा।।''

जो जीव संसार परिभ्रमण करता है उसके राग-द्वेषादि परिणामों की उत्पत्ति होती रहती है और उनके द्वारा अशुभ कर्मों का आस्त्रव होता रहता है, अशुभ कर्मास्त्रव से कुगति तथा शुभ कर्मास्त्रव से सुगति मिलती है। गतियों में जाने के बाद शरीर की प्राप्ति होती है और उनसे इन्द्रियों के स्पर्शादि विषयों का ग्रहण होता है और विषय ग्रहण से उनमें अच्छे-बुरेपन की कल्पना जाग्रत होती है अर्थात् राग-द्वेष होने लगते है और राग-द्वेष होने से संसार में भ्रमण करना पड़ता है। इसी तरह यह जीव अनादि काल से सदा संसार में रूलता और दुःख उठाता रहता है। कभी इसे आत्मा के वास्तविक सुख की प्राप्ति नहीं होती। अतएव राग-द्वेष सर्वथा हेय ही हैं।

उवओगमओ जीवो मुज्झदि रज्जेदि वा पदुस्सेदि।
पप्पा विविधे विसये जो हि पुणो तेहिं सो बंधो।। (75)

(उवओग मओजीवो) उपयोगमयी जीव (विविधे विसये) नाना प्रकार इन्द्रियों के पदार्थों को (पप्पा) पाकर (मुज्झदि) मोह कर लेता है (रज्जेदि) राग कर लेता है (वा) अथवा (पदुस्सेदि) द्वेष कर लेता है। (पुणो तथा हि) निश्चय से जो वही जीव (तेहि संबंधो) उन भावों से बंधा है, यही भावबंध है। यह जीव निश्चयनय से विशुद्ध ज्ञान दर्शन उपयोग का धारी है तो भी अनादि काल से कर्मबंध की उपाधि के वश से जैसे स्फटिकमणि उपाधि के निमित्त से अन्य भावरूप परिणमति है। इसी तरह कर्मकृत औपाधिक भावों से परिणमता हुआ इन्द्रियों के विषयों से रहित परमात्म-स्वरूप की भावना से विपरीत नाना प्रकार पंचेन्द्रियों के विषयरूप पदार्थों को पाकर उनमें राग-द्वेष-मोह कर लेता है। ऐसा होता हुआ यह जीव राग-द्वेष-मोह रहित अपने शुद्ध वीतरागमयी परमात्म धर्म को न अनुभवता हुआ इस राग-द्वेष-मोह भावों के निमित्त से बद्ध होता है। यहाँ पर जो इस जीव के यह राग-द्वेष-मोह रूप परिणाम हैं सो ही भाव बंध हैं।

इस गाथा से एवं अमृतचन्द्र सूरी की टीका से वह ज्ञात होता है कि मोह

(मिथ्यात्व) राग एवं द्वेष भाव बंध है। भाव बंध के साथ-साथ स्वयं बंध स्वरूप ही है, क्योंकि आत्मा अलग है, मोह-राग-द्वेष अलग है। दो वस्तुओं का संश्लेष रूप से मिल जाना बंध है। मोह-राग-द्वेष रूप परिणाम से कर्मबंध होता है इसलिए बंध के लिए भी कारण है। जैसे द्रव्य कर्मबंध के लिए कारण हो सकता है या नहीं हो सकता है परन्तु वैसे भाव कर्म भजनीय नहीं हो सकते हैं। इसलिए द्रव्य कर्म के उदय से पुनः द्रव्य कर्मबंध हो सकता है या नहीं हो सकता परन्तु भावकर्म से अवश्य द्रव्यकर्म का बंध होगा ही। कुंदकुंद देव ने समयसार में अज्ञानी (मिथ्यादृष्टि) जीव राग-द्वेषादि करके कर्म को संचय करता है, ऐसा कहा है। यथा-

जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासहावण दोण्हंपि।
अण्णाणी तावदु सो कोहादिसु वट्टदे जीवो।। (74)
कोधादिसु वट्टंतस्स कम्मस्स संचओ होदि।
जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलु सव्वदरसीहिं।। (75)

टीका-(जाव ण वेदि विसेसंतरं तु आदासहावण दोण्हंपि) शुद्धात्मा और क्रोध आदि आस्रवों के स्वरूप में जो विशेषता है उसको यह जीव जब तक नहीं जान लेता-समझ लेता, (अण्णाणी तावदु सो) तब तक यह अज्ञानी और बहिरात्मा बना रहता है। अज्ञानी होकर वह क्या करता है कि (कोहादिसु वट्टदे जीवो) जैसे मैं ज्ञान हूँ (अर्थात् ज्ञान मेरा स्वभाव है) इस प्रकार ज्ञान के साथ एकता को लिए हुए है वैसे ही क्रोधादिक आस्रव भावों से रहित ऐसी निर्मल आत्मानुभूति है लक्षण जिसका ऐसे शुद्धात्म स्वभाव से पृथक् भूत क्रोधादिक भाव हैं उनमें भी मैं क्रोध रूप हूँ (क्रोध करना मेरा स्वभाव है) इस प्रकार एकांत को लिए हुए रहता है, परिणमन करता है। (क्रोधादिसुचट्टंतस्स तस्स) उत्तम क्षमादि-स्वरूप जो परमात्मा है उससे विलक्षण जो क्रोधादि भाव है उनमें प्रवर्तन करने वाले इस जीव के (कम्मस्स संचओ होदि) परमात्म स्वरूप को तिरोहित करने वाले कर्म का संचय, आस्रव, आगमन होता रहता है। (जीवस्सेवं बंधो भणिदो खलुसव्वदरसीहिं) जैसे तेल लगाए हुए जीव के शरीर में धूलि का समागम हो जाता है वैसे ही नूतन कर्मों का आस्रव होने पर फिर तेल के संबंध से मैल के चिपक जाने के समान प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश लक्षण वाला जो कि अपने शुद्धात्मा की प्राप्ति स्वरूप मोक्ष से विलक्षण है, ऐसा बंध अवश्य ही होता है। सर्वज्ञ भगवान् ने नूतन बंध का ऐसा वर्णन किया है और जब तक अपने

शुद्धात्म स्वरूप को स्व-संवेदन ज्ञान के बल से क्रोधादिक से पृथक् करके नहीं जानता है (अपने अनुभव में नहीं लाता है) जब तक अज्ञानी रहता है तब तक अज्ञान के द्वारा उत्पन्न होने वाली कर्त्ता-कर्मरूप प्रवृत्ति को भी नहीं छोड़ता है इसलिए बंध होता रहता है। बंध से संसार का परिभ्रमण होता रहता है ऐसा अभिप्राय है।

आत्मविश्वास-आत्मसम्मान से करूँ आत्मविकास

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा.....)

डजया रे! तू आत्मविश्वास करऽऽ,
आत्मविश्वास सह आत्मसम्मान सेऽऽ, आत्मविकास तू करऽऽ...(ध्रुव)

स्व-विश्वास ही आत्मविश्वास हैऽऽ, स्व-आध्यात्मिक गुण विश्वासऽऽ
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य वऽऽ, स्वयंभू सनातन अविभाज्यऽऽ
यह ही आत्मविश्वासऽऽ जिया...(1)

इन गुणों का तू सम्मान करो हे!ऽऽ, इनका करो आदर बहुमानऽऽ
इनका स्वागत वंदन अभिनंदनऽऽ, करो स्मरण-मनन व ध्यानऽऽ
जिससे होगा आत्म उत्थानऽऽ जिया...(2)

स्व-गुणों का कभी न करो अविश्वासऽऽ, स्वयं को न मानो दीन-हीनऽऽ
राजा महाराजा सेठ साहूकार से भीऽऽ, स्व-गुणों से मानो महान्ऽऽ
सच्चिदानंदमय स्व-आत्मन्ऽऽ जिया...(3)

आकाश यथा छोटा-मोटा न होताऽऽ, विभिन्न भौतिक पात्र/(वस्तु) सेऽऽ
तथा सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि डिग्री सेऽऽ, कोई न होते दीन-हीन-महान्ऽऽ
ये तो भौतिक-विकारी परिणमनऽऽ
तेरे गुण तो आध्यात्मिक महान्ऽऽ जिया...(4)

राग द्वेष मोह काम क्रोध लोभऽऽ, ईर्ष्या तृष्णा व अभिमानऽऽ
दीन-हीन व प्रमाद भय सेऽऽ, होता स्व-आत्मा/(गुणों) का असम्मानऽऽ
इसी से होता आत्म पतनऽऽ जिया...(5)

अन्य जीवों को भी आत्म सम समझोऽऽ, सभी का करो यथायोग्य सम्मानऽऽ

अन्य के कारण आत्मविश्वास न त्यागोऽऽ, न करो आत्म असम्मानऽऽ
समता को करो वरणऽऽ जिया...(6)

इसके अतिरिक्त अन्य उपायों सेऽऽ, न होता आध्यात्मिक सर्वोदयऽऽ
संतुष्टि तृप्ति व शांति न मिलतीऽऽ, आत्मविश्वास-सम्मान से संभवऽऽ
'कनक' दोनों में प्रतिबद्धऽऽ
स्व में स्व का (चाहे) सम्बद्धऽऽ जिया...(7)

सीपुर, दिनांक 13.08.2016, रात्रि 9.12

संदर्भ-

निजी शक्ति को अर्जित करना

-ली पुलोस पीएच.डी., एबीपीपी

अपने अब तक के चिकित्सीय अनुभव में मैंने हजारों मरीजों से बातचीत की है। मैं एक मोटा-सा अनुमान लगा सकता हूँ कि उनमें से करीब 95 प्रतिशत मरीज अपने आत्मविश्वास व आत्मसम्मान की कमी के चलते बीमारी से ग्रस्त थे। उनमें किसी तरह का अपराध बोध, योग्य या अयोग्य होने का भाव पनप रहा था जो प्रेम, सफलता, स्वास्थ्य और समृद्धि को प्राप्त करने की और उनकी योग्यता को प्रभावित कर रहा था।

आत्मसम्मान मन और आत्मा के लिए प्रतिरोधी तंत्र के समान काम करता है। आत्मसम्मान हमारा वह अनुभव है, जिसके चलते हम स्वयं को दुनिया की चुनौतियों से मुकाबला करने के काबिल पाते हैं, स्वयं को योग्य समझते हैं और खुशी का अनुभव करते हैं, साथ ही स्वयं को इसका अधिकारी भी मानते हैं। जिन लोगों में आत्मसम्मान की भावना अधिक होती है, वे इस बात को समझते हैं कि वे अपने जीवन का काम कर रहे हैं। वास्तविक आत्मसम्मान वह होता है जब लोग उसे तब भी धारण करते हैं जब उनके जीवन में कुछ सही नहीं हो रहा होता है।

स्व-सम्मान का संबंध एक व्यक्ति के रूप में हमारे मूल्यों से है यानि आंतरिक निश्चितता, आनंद का अनुभव, जीवन में सफलता की आशा, स्वयं को दूसरों को आकर्षित करने योग्य समझाना और अपने जीवन में प्रेम को प्रवेश करने की अनुमति देना। ऐसे लोग जिनमें आत्मविश्वास कम होता है, वे प्रेम पाने से ज्यादा प्रेम देने में

विश्वास रखते हैं। उनके लिए प्रेम देना आसान होता है।

यदि आपका प्रतिरोधी तंत्र मजबूत है तो क्या इसका अर्थ यह है कि आप कभी भी बीमार नहीं पड़ेंगे? नहीं, बिलकुल नहीं। इसका अर्थ यह नहीं है। मगर आपके बीमार पड़ने की संभावनाएँ अन्य व्यक्तियों की तुलना में कम हो जायेंगी और बीमारी की चपेट से बाहर आना आपके लिए आसान होगा। इसी तरह से आत्मविश्वास के बढ़े-चढ़े होने का यह अर्थ हरगिज नहीं है कि आप कभी दुःखी, निराश या अतिरेकी नहीं होंगे।

इसका अर्थ यह है कि आप में औरों के मुकाबले मानसिक आघातों को सहने की शक्ति अधिक है और यही आत्मविश्वास से भरपूर रहने का लाभ है। यदि आपके सामने कोई लक्ष्य है तो आप दृढ़निश्चय के साथ उस लक्ष्य को प्राप्त करने में जुटे रहेंगे। ऐसा नहीं कि आप असफल नहीं होंगे, मगर सतत प्रयास में जुटे रहेंगे और आपकी सफलता का प्रतिशत असफलता से अधिक रहेगा। मैं एक संगोष्ठी को संबोधित कर रहा था, वहाँ एक प्रबंधक ने सारे समूह को बताया, ''मैंने पाँच बार असफलता का मुँह देखा, मगर छठी बार सफलता प्राप्त कर ही ली।'' किसी कंपनी के प्रमुख कार्यकारी अधिकारी सफलता के शिखर पर पहुँचने से पहले औसतन 3.2 बार असफल हो चुके होते हैं।

आत्मविश्वासहीन व्यक्ति लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयास तो करेगा मगर उसके प्रयासों में वह विश्वास और दृढ़ता नहीं होगी अतः असफलता की संभावना अधिक होगी। हमारा आत्मविश्वास हमारे भीतर एक खास तरह की अपेक्षाओं, प्रत्याशाओं और संभावनाओं को जन्म देता है जो हमारे द्वारा पूरी की जाने वाली भविष्यवाणियाँ बन जाती है। यूँ तो हमारा आत्मविश्वास जीवन के हर क्षेत्र में झलकता है मगर रिश्तों और प्रेम के क्षेत्र में यह अधिक तीव्रता से दिखाई देता है। यदि कोई व्यक्ति आत्मविश्वास की कमी के चलते स्वयं को प्रेम करने के लायक नहीं समझता है तो वह इस बात पर विश्वास ही नहीं कर सकेगा कि कोई अन्य व्यक्ति उसे प्रेम करता है और इसके कारण वह रिश्तों में दरार लाने या उन्हें खत्म करने का हरसंभव प्रयास करता रहेगा। क्या आपने कभी ऐसा अनुभव किया है कि किसी व्यक्ति को जो स्वयं को प्रेम करने लायक नहीं समझता हो, उसे प्रेम का विश्वास दिलाना बहुत कठिन हुआ हो? आप उसे अपने प्रेम का विश्वास दिलाने के लिए कुछ नहीं कर सकते।

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारे आत्मविश्वास का स्तर अलग-अलग हो सकता है और उसी के अनुसार उस क्षेत्र में हमारा प्रभाव, प्रदर्शन का स्तर और सफलता तय होती है। उदाहरण के लिए यदि एक मैनेजर के रूप में संवाद करते समय आपका आत्मविश्वास बहुत बढ़ा-चढ़ा होगा तो आपका प्रदर्शन और प्रभावशीलता इसी के अनुसार तय होगा। मशीनों के साथ काम करते समय या उपकरणों का रखरखाव करते समय आपका आत्मविश्वास कम रह सकता है और आपके मित्र आपको प्यार से उस क्षेत्र में अनाड़ी की उपाधि दे सकते हैं। एक पालक या साथी के रूप में आपका आत्मविश्वास मध्यम श्रेणी का हो सकता है और आपका प्रदर्शन भी उसी के अनुसार होगा।

यदि आप अपने जीवन के सभी क्षेत्रों को लेकर उनमें अपने प्रदर्शन के उच्च और निम्न स्तर को ग्राफ के रूप में अंकित करे तो आप इसे एक वक्राकार आकृति के समान देखेंगे। मनोवैज्ञानिक इसे एक औसत स्तर के आत्मविश्वास अर्थात् जी फैक्टर का नाम देंगे।

अपने जीवन के कुछ क्षेत्रों में अपने प्रदर्शन को बेहतर बनाने और अपने आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए कुछ अभ्यास करना होगा जिसके द्वारा हमें अभिपुष्टि द्वारा अपने अवचेतन मन में अंकित सूचनाओं को फिर से देखना होगा व नई सूचनाएँ अंकित करनी होंगी।

इस तरह हमारा आत्मविश्वास हमारे मन में अपने लिए बनाया गया स्थान है। हमारी स्व-अवधारणा आत्मविश्वास से अधिक वृहद होती है। यह वास्तव में एक छाते की तरह होती है जिसमें हमारे विश्वास, धारणाएँ और हमारी शारीरिक छवि सम्मिलित रहती है जो कि हमारी स्व-अवधारणा का महत्वपूर्ण हिस्सा होती है। इसमें हमारी जिम्मेदारियाँ, संपत्ति, सीमाएँ और क्षमताएँ निहित रहती है। आत्मविश्वास इसका ही एक हिस्सा होता है।

आत्मविश्वास के महत्व पर सभी का ध्यान करीब 40 साल पहले आकर्षित हुआ जब कॉस्मेटिक चिकित्सक डॉ. मैक्सवेल माल्ट्ज ने सायको साइबरनेटिक्स पुस्तक को प्रकाशित किया। अपनी पुस्तक में वे लिखते हैं कि किस तरह उन्होंने एक सुबह गंभीर अपराध हेतु जेल में बंद कैदियों की एक सप्ताह तक कॉस्मेटिक चिकित्सा करने का निर्णय लिया। दो साल बाद जेलर ने डॉ. माल्ट को अपने दफ्तर

में बुलाया और बताया कि ऐसे कैदी जिनके चेहरे किन्हीं आघातों में बिगड़ गए थे और उनकी कॉस्मेटिक चिकित्सा करने के बाद कैदियों द्वारा आत्महत्या करने के मामलों में कमी आई है। चिकित्सा से लौटने के बाद कैदी शांति से अपनी सजा समाप्ति की राह देखते हैं। डॉ. माल्ट को इस बात का अहसास हुआ कि उनकी शारीरिक छवि सुधारने से उनका आत्मविश्वास बढ़ गया। यह मैंने पहले भी बताया है। स्वतः की छवि सुधरने से कैदी स्वयं के बारे में अपनी राय बदल पाये। वह आत्मविश्वास का वर्णन करते हुए इसे बीसवीं सदी की सबसे महत्वपूर्ण खोज कहते हैं। जो भी हो, हो सकता है यह बात हरेक मामले में सही नहीं हो।

डॉ. माल्ट आगे दो महिलाओं के बारे में लिखते हैं जिनके चेहरों की शल्य चिकित्सा की गई थी। जब चेहरों से पट्टियाँ हटाई गई और उन्होंने अपना चेहरा दर्पण में देखा तो वे अवसाद से भर उठी और कहने लगी, मुझे स्वयं में कोई अंतर दिखाई नहीं दे रहा है। मैं अभी भी अपने बारे में पहले जैसा ही महसूस कर रही हूँ। इस घटना के बाद डॉ. माल्ट को अहसास हुआ कि लोगों के मन में स्वयं की छवि बाहरी सुंदरता पर निर्भर नहीं होती वरन् यह उनके मन में बनी आंतरिक छवि होती है।

इन पंक्तियों से मुझे एलिजाबेथ टेलर का एक साक्षात्कार याद आ रहा है जिसमें वे अपने बारे में बहुत स्पष्ट राय रखते हुए खुद को एक स्थूल, नाटी और भयानक दिखने वाली महिला कह रही थी। वह कह रही थी ''मैं अपनी नाक को पसंद नहीं करती, मेरी आँखें बहुत दूर-दूर हैं, मुझे अपने चेहरे का आकार भी पसंद नहीं है। काश मैं अपना स्वरूप बदल सकती।'' यह दुनिया की सबसे खूबसूरत मानी जाने वाली महिलाओं में से एक का बयान है। कोई आश्चर्य नहीं है यदि उसके व्यवहार में वे सारी बातें दिखाई दे जो उसे हानि पहुँचाये जैसे नशे की वस्तुएँ, शराबखोरी, कई दुर्घटनाएँ और कई शल्य चिकित्साएँ, आठ शादियाँ और इसी तरह की बहुत सारी घटनाएँ। आत्मविश्वास अंतर्मन का ही कार्य है।

अब मैं आत्मविश्वास कम होने या आत्मविश्वासहीनता के कुछ लक्षणों को विस्तार से बताना चाहूँगा। जब हम इन लक्षणों को जान लेंगे तो स्वयं में क्या बदलाव लाया जाना है इसके प्रति जागरुक हो सकेंगे। हममें से सभी में ऐसे कुछ लक्षण होते हैं जिनके साथ हम जीवन के जहाज को खेते चलते हैं। यहाँ यह अवसर है कि उन लक्षणों को पहचाना जाये और उन्हें बदलने की पहल की जाये।

पहला लक्षण है स्वयं को हालात का शिकार समझना। ऐसे लोगों का स्वयं पर बिलकुल विश्वास नहीं होता। वे अपने लिए बहुत दुःखी होते हैं और उन्हें हमेशा ऐसा लगता है कि जीवन के हर पड़ाव पर उन्होंने गलतियाँ ही की हैं। उन्हें हमेशा ऐसा लगता है कि उनकी कोई प्रशंसा नहीं करता, उन्हें कोई समझता ही नहीं है या उनके साथ हमेशा अन्याय हुआ है। वे स्वयं को किसी बात के लिए जिम्मेदार मानना नहीं चाहते। वे यह चाहेंगे कि आप उनके लिए हर काम करे। ऐसे लोग हमेशा अपराध बोध से भरे रहते है और उससे बाहर निकालने के लिए किसी न किसी का सहारा तलाशते हैं और इसके लिए वे हर तरह की तिकड़म भिड़ा सकते हैं। इतना सब करने के बाद भी वे अपने अपराध बोध से बाहर नहीं आ पाते, सफल नहीं हो पाते और इसके लिए वे हमेशा अपने करीबी लोगों को या अपनी परिस्थितियों को ही दोषी ठहराते हैं।

ये लोग अपने भूतकाल को बदलने की बात करते रहते हैं और उसी में शक्ति का अनुभव करते है जैसे ''यदि मैंने किसी और घर में जन्म लिया होता, यदि मेरे पिता के पास अधिक धन होता...'' केवल दूसरों पर दोषारोपण, दोषारोपण जो कि ताकत का कमतर (सस्ता) प्रदर्शन है। यही एक ताकत उनके पास होती है और वे इसे दूसरों पर आरोपित करते रहते हैं।

यहाँ एक-दूसरे पहलू पर भी विचार करें। अक्सर लोगों को लगता है कि आत्मविश्वासहीनता का भाव उन लोगों में प्रमुखता से पाया जाता है जो अपने जीवन में बहुत निचली पायदान पर ही रह गए हैं, आगे नहीं बढ़ पाए हैं। मगर ऐसा नहीं है। दो साल पहले मेरे केबिन में एक महिला रोगी आई जिसने चमड़े के कपड़े पहने थे, गले में जंजीर पहनी थी और उसके चेहरे पर गुस्से और नीचता के भाव थे। जब मैंने उसका इतिहास जानना चाहा तो उसने बताया कि वह एक रखैल है। यह सुनते ही मेरा दिमाग चक्कर खा गया। वह बताती गई कि लोग उसे इस बात के लिए नौकरी पर रखते हैं कि वह उन्हें अपमानित करे, उनसे गाली-गलौज करे। मैं हतप्रभ था। क्या ऐसे भी लोग हैं जो स्वयं को अपमानित करने के लिए किसी महिला को नौकरी पर रखें? उसने मुझे विश्वास दिलाया कि उसका काम किसी तरह अनैतिक संबंधों पर आधारित नहीं है, उसका अपने ग्राहकों से किसी तरह का यौन संबंध नहीं है। मैं आश्चर्यचकित था कि ऐसे भी लोग हैं जो स्वयं को अपमानित करवाने के लिए धन

देते हैं। उसने बताया कि उसका एक ग्राहक सुप्रीम कोर्ट का न्यायाधीश है, दो सफल व्यापारी है और एक प्रसिद्ध वकील है। इस बात ने मुझे गहरा धक्का पहुँचाया। उस महिला ने आगे बताया कि उसके ग्राहक इम्पोस्टर सिंड्रोम मनोरोग से पीड़ित हैं जिसके कारण अपने व्यवसाय में प्रसिद्धि और ऊँचाई हासिल करने के बाद भी वे स्वयं को उससे जुड़ा हुआ नहीं महसूस करते। उसके शब्दों में, ''वे आत्मविश्वासहीनता से जकड़े हुए हैं और मेरे पास आते हैं ताकि मैं उन्हें अपमानित करके उन्हें उस निचाई तक लाऊँ, जहाँ वे स्वयं को महसूस करते हैं। यह घटना मेरी आँखें खोलने के लिए पर्याप्त थी और वह एक ऐसा दिन था जब मेरा मरीज मेरा शिक्षक बन गया था।''

अब आत्मविश्वासहीनता के दूसरे लक्षण पर विचार करते हैं। इसमें व्यक्ति स्वयं को शहीद बनाने पर तुल जाता है। यूँ भी हमारी मान्यताएँ, संस्कृति और धार्मिक मूल्य जिनके साथ ही हम बड़े हुए हैं, हमें यह बताते रहते हैं कि बिना कष्ट के कुछ पाया नहीं जा सकता। हमारी संस्कृति में भी कष्ट और संघर्ष को पूजा जाता है, और हरेक धर्म शिक्षक उनके संघर्ष, त्याग और कठोर श्रम के चलते ही उदाहरणों का हिस्सा बन सके हैं। यह धारणा इस तरह से हमारे चेतन मन का हिस्सा बन चुकी है कि कुछ लोग बिना कष्ट पाये, बिना संघर्ष किये या असफलता का स्वाद लिए बिना सफल होने को ठीक नहीं समझते। मगर हमें इन विशेषताओं को अधिक स्पष्टता से देखना होगा जिससे हम उन्हें पहचान सके और यदि वे हम पर भी लागू होती हैं तो उन्हें निकाल बाहर करने का प्रयास कर सकें।

शहीद भावना का पहला लक्षण है स्वयं को नाचीज समझना या ऐसा समझना कि आपकी भरपूर मेहनत के बाद भी लोग आपकी प्रशंसा नहीं करते जैसे-मैंने जितने कष्ट झेले हैं, किसी और ने क्या झेले होंगे, कोई भी मुझसा कठोर श्रम नहीं करता, तुम नहीं समझते कि मुझे आगे बढ़ने के लिए कितनी कठिनाइयों और अवरोधों का सामना करना है आदि।

ऐसे लोगों को हमेशा ऐसा भी लगता है कि उन्हें गलत समझा जा रहा है उनके साथ अन्याय हो रहा है। उनमें हमेशा निराशा और लाचारी का भाव विद्यमान रहता है और हमेशा स्वयं को गलत समझे जाने की बात करते हैं।

आत्मविश्वासहीनता का एक और लक्षण है स्वयं को अयोग्य महसूस करना

जो आपको बार-बार भूतकाल में घसीटता है और आगे बढ़ने से रोकता है। स्वयं को अयोग्य मानने से भविष्य में मिलने वाली सफलता भी हाथ से फिसल जाती है और यह विचार आपकी गति को धीमा कर देता है। यह विचार बजाय आगे बढ़ाने के आपको वापस वहीं ले जाता है जहाँ से आपने शुरू किया था।

आत्मसम्बोधन व आत्मविकास हेतु

स्व-स्मरण से लेकर स्व-परिणमन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे तू काहे न धीर धरे....., सायोनारा....., मोक्ष पद मिलता है.....)

जिया रे! तू स्व-स्मरण/(सुमिरन) करऽऽ
स्व-सुमिरन से स्व को जानोऽऽ स्व-अनुप्रेक्षा करोऽऽ...(ध्रुवपद)

इसी से तेरा होगा आत्म विश्लेषणऽऽ जिससे होगा स्व-गुण-दोष परिज्ञानऽऽ
गुण विकास व दोष विनाश सेऽऽ होगा तेरा आत्म-उन्नयनऽऽ
आत्म क्रम विकास करऽऽ
पाओगे परम आत्मविकासऽऽ जिया रे...(1)

तू तो सच्चिदानंदमय परमब्रह्मऽऽ राग द्वेष मोहादि तेरे दुर्गुणऽऽ
स्वगुणों के सुमिरन (के) द्वाराऽऽ दुर्गुणों का करो विश्लेषणऽऽ
करो दुर्गुण परिहरणऽऽ जिया रे...(2)

दुर्गुण त्याग हेतु करो स्वाध्यायऽऽ आगम अनुभव द्वाराऽऽ
समता-शांति निस्पृहता द्वाराऽऽ करो दोषों का निवारणऽऽ
जिससे होंगे गुण उद्घाटनऽऽ जिया रे...(3)

इसी हेतु ही करो तप-त्याग-ध्यानऽऽ यम-नियम व अनुशासनऽऽ
संयम-धैर्य व क्षमादि पालनऽऽ अध्यापन-प्रवचन-लेखनऽऽ
करो स्व का शुद्धिकरणऽऽ जिया रे...(4)

लेन्स के माध्यम से यथा सूर्य रश्मिऽऽ होती है एककेन्द्रिकरणऽऽ
अग्नि उत्पन्न होती तथाहि तुझमेंऽऽ होंगे स्व-गुणों का जागरणऽऽ
जिससे बनोगे भगवान्ऽऽ जिया रे...(5)

बीज से यथा वृक्ष दूध से यथा घृतऽऽ तथाहि आत्मा से परमात्माऽऽ
इसी हेतु ही तुझे करना पुरुषार्थऽऽ अन्य सभी तेरे (होंगे) सहायकऽऽ
लक्ष्यानुसार ही दृढ़चित्तऽऽ जिया रे...(6)

अन्यथा सभी साधन व साधनाऽऽ न देंगे सही परिणामऽऽ
तेरा परिणाम ही परिणाम देगाऽऽ परिणाम ही करता परिणमनऽऽ
'कनक' स्व में करो परिणमनऽऽ जिया रे...(7)

सीपुर, दिनांक 12.08.2016, रात्रि 9.10

यह कविता ''आपके अवचेतन मन की शक्ति के आगे'' सी. जेम्स जेनसन से भी प्रभावित है।

संदर्भ-

हममें से अधिकांश लोगों को यह सिखाया जाता है कि कड़ी मेहनत करने से ही प्रदर्शन का स्तर बढ़ाया जा सकता है। एक बार हमारा प्रदर्शन अच्छा हो जाता है तो फिर हम जीवन के उस क्षेत्र में आगे उन्नति के बारे में सोच सकते है या हम अपनी स्व-अवधाराणाओं को आगे बढ़ने की अनुमति दें। सौभाग्य से यह इस तरह काम नहीं करता। यहाँ हम निर्देशों, प्रशिक्षण और अभ्यास के महत्व को कम नहीं आँकना चाहते मगर कारण और प्रतिक्रिया में मुख्य रिश्ता यही है कि आपकी स्व-अवधारणा ही आपके प्रदर्शन का स्तर निर्धारित करती है।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ जिससे इस बिंदु को विस्तार से समझा जा सकेगा।

1954 से पहले दुनिया के सभी श्रेष्ठ धावक इस बात को सत्य मानते थे कि किसी आदमी के लिए चार मिनिट से कम समय में एक मील की दूरी तय करना असंभव है। इसके पीछे का कारण यह था कि आदमी द्वारा स्टॉप वाच के आविष्कार के बाद पिछले दशक में हुई हजारों दौड़ में किसी भी व्यक्ति ने छह मिनिट से कम समय में एक मील की दूरी तय नहीं की थी। कई लोग सैकेंड के दसवें हिस्से के पास आ गए मगर समय चार मिनिट से कम न हो सका।

और उसके बाद क्या हुआ?

1954 में ब्रिटेन के एक मेडिकल के विद्यार्थी रोजर वैनिस्टर इतिहास का

पहला व्यक्ति बना जिसने एक मील की दौड़ चार मिनिट के अंदर पूरी कर ली। तो क्या? तो इसके बाद यह कि अगले तीन सालों में करीब 16 लोगों ने चार मिनिट से कम समय में यह दौड़ पूरी की। दौड़ने की मूलभूत प्रक्रियाओं या साधनों जैसे जूते, रेसिंग ट्रेक आदि में कोई बदलाव नहीं हुआ था, तकनीक या प्रशिक्षण में भी कोई बदलाव नहीं था। केवल इस स्व-अवधारणा को हटाया गया था कि यह दौड़ चार मिनिट में पूरी नहीं की जा सकती।

खेल गतिविधियों में हिस्सा लेने वाले खिलाड़ियों का एक सा या बेहतर होता प्रदर्शन स्व-अवधारणा का बढ़िया उदाहरण है।

बेसबाल के खेल में हिटर या बल्लेबाज के बैटिंग का एक औसत होता है और पिचर या रन बनाने वाले का एक औसत होता है और अधिकतर इन खिलाड़ियों के खेल के परिणाम एक से ही रहते हैं, ऐसा उनकी स्व-अवधारणा के कारण होता है। जब वे अपने औसत से अच्छा प्रदर्शन करते हैं तो उन्हें कहा जाता है कि वे अपने फार्म में है या बेहतर समय में है और जब उनका प्रदर्शन औसत से कम हो जाता है तो कहा जाता है मंदी में है या फॉर्म में नहीं है। ऐसा ही कुछ गोल्फ के खिलाड़ियों के साथ होता है। खेल की सारी बाधाओं के साथ उनका प्रदर्शन भी एक सा रहता है।

हम जब अपनी स्व-अवधारणा से अधिक अच्छा प्रदर्शन करते है तो हम उसे अच्छा समय या फार्म बताकर उसके महत्व को कम क्यों करते हैं? क्योंकि जैसे कि हमने पहले भी कहा कि हमारी स्व-अवधारणा हमारे लिए नियामक कारक होती है और वह हमारे प्रदर्शन को तय करती है।

याद रहे हमारी स्व-अवधारणा का अर्थ है कि हम स्वयं को जीवन के किसी क्षेत्र में किस तरह देखते हैं। जैसे ही यह चित्र सकारात्मक या नकारात्मक रूप से बदलता है, हमारी अवधारणा बदलती है और उसी के अनुरूप हमारे प्रदर्शन का स्तर भी सकारात्मक या नकारात्मक रूप से बदलता है।

यदि हम अपने प्रदर्शन को बेहतर बनाना चाहते है तो हमें अपनी स्व-अवधारणा को बदलना होगा।

नवीन स्व-अवधारणा - प्रदर्शन का क्या स्तर

परिणाम - वर्तमान

स्व-अवधारणा - प्रदर्शन का स्तर

वर्तमान

हम अपने अंदर इस तरह की प्रतिक्रियाएँ विकसित कर लेते हैं जो हमें उस स्तर तक पहुँचाने में, जो हम वास्तव में है, हमें वह बनाने में बाधा उत्पन्न करती है। जैसे-जैसे हम इस पुस्तक के साथ आगे बढ़ेंगे, हम आपको वे तकनीकें बतायेंगे जिनके आधार पर आप स्वयं के बारे में संपूर्ण सूचनाएँ एकत्र कर पायेंगे कि आपको अपने अंदर क्या अच्छा लगता है, क्या खराब, आप स्वयं किस क्षेत्र में अच्छा व किसमें कमजोर मानते हैं? साथ ही व्यवहार के कुछ तरीके भी जान सकेंगे जिन्हें आप बदलना चाहेंगे। जैसे ही हम उन बातों के बारे में जान पायेंगे जिन्हें हम बदलना चाहते हैं या उनमें भिन्नता लाना चाहते हैं, फिर हम धीरे-धीरे उन तरीकों और तकनीकों के बारे में जानेंगे जो हमें इन सभी परिवर्तनों को बहुत थोड़े से प्रयास से ला पाना संभव बनायेंगे जिसकी हमने कल्पना भी नहीं की होगी।

गति या परिणति के नियम

(निश्चित न्यूनतम गति से कम से कम काम सही नहीं होता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

सत्य-समता-शांति को जीवन में पाना है अभी।
'शुभस्य शीघ्र करणीय' कहते हैं महापुरुष सभी।। (1)

प्रमाद-आलस्य या मंदता से काम न होता है सही।
चंचलता क्षुब्धता रहित कार्य ही होता है सही।। (2)

निश्चित न्यूनतम गति से यदि वायुयान उड़ता है।
वह वायुयान बलरहित होकर नीचे आकर गिरता है।। (3)

तथाहि वायु साइकिल व लट्टू भी गिर जाते है।
अति धीरे-धीरे काम करने से सही काम नहीं होते है।। (4)

शारीरिक क्रियाएँ जब न्यूनतम गति से भी कम होती है।
आधि-व्याधि व मृत्यु तक होने की संभावना होती है।। (5)

सूर्यग्रह व निहारिकाओं की गति जब समुचित होती।
तब ही खगोलिय व्यवस्था सही होती अन्यथा दुर्घटना होती।। (6)

विश्व की हर गति या क्रियाएँ समुचित मात्रा में होती।
जघन्य-मध्यम-उत्तम रूप में यथायोग्य ही होती।। (7)

अन्यथा अतिक्रम-व्यतिक्रम से दुर्घटनाएँ होती।
तन-मन-वचन आदि की क्रिया में ही ऐसी ही होती।। (8)

समुचित-व्यवस्थित हर क्रियाएँ होती हैं यथार्थ।
हर कार्य समुचित करने हेतु 'कनकनन्दी' सदा करे प्रयत्न।। (9)

सीपुर, दिनांक 24.08.2016, रात्रि 11.28

मेरी अनुशासन पद्धतियाँ व उपलब्धियाँ

(स्व पर आत्मानुशासन व आत्मविकास हेतु मेरी अनुशासन पद्धतियाँ)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : सुनो-सुनो ऐ दुनिया वालों.....)

ध्यान से सुनो हे! भक्त शिष्य, अनुशासन की मेरी पद्धति।
जिससे तुम लाभान्वित होकर, पाओगे समता-शांति-प्रगति।।

आत्मानुशासन हेतु होती मेरी, सभी ही अनुशासन की पद्धतियाँ।
दबाव-प्रलोभन-ईर्ष्या-घृणा, निन्दा-अपमानादि से रहित ही।।

पहले मैं स्व-अनुशासन करूँ, इसके अनन्तर योग्य शिष्य को करूँ।
(अयोग्य शिष्य)/अन्य हेतु सुभावना भाऊँ, किसके लिए भी कुभाव न भाऊँ।।

स्व-पर-विश्वहित हेतु तथा इह-परलोक के सुख के हेतु।
तन-मन-आत्मा-स्वास्थ्य हेतु, वात्सल्य-एकता-सेवा हेतु।।

मर्यादा-शालीनता-संयम हेतु, व्रत-नियम-पालन हेतु।
परनिन्दा-अपमान त्याग हेतु, वैर-विरोध-त्याग के हेतु।।

कट्टर-संकीर्णता-त्याग हेतु, दुराग्रह-हठाग्रह-त्याग हेतु।
उदार-अनेकान्त-पालन हेतु, सनम्र-सत्यग्राही बनने हेतु।।

रूढ़िवादिता त्यागने हेतु, प्रगतिशील आध्यात्मिक बनने हेतु।
एकांतवाद त्यागने हेतु, आगमनिष्ठ व आत्मविशुद्धि करने हेतु।।

तेरा-मेरा-भेदभाव त्यागने हेतु, धनी-गरीब पक्षपात छोड़ने हेतु।
शत्रु-मित्र-भाई-बंधु से समता, अक्षमा-भाव न रखने हेतु।।

ढोंग-पाखण्ड त्यागने हेतु, अंधविश्वास-नकलची छोड़ने हेतु।
ख्याति-पूजा-लाभ छोड़ने हेतु, आडम्बर-विज्ञापन त्यागने हेतु।।

मंच-माईक-पाण्डाल-मोह छोड़ने हेतु, भीड़-जयकार त्यागने हेतु।
पत्रिका होर्डिंग त्यागने हेतु, गाजा-बाजा साज-सज्जा छोड़ने हेतु।।

टी.वी. (प्रोग्राम) फोटो (ग्राफी) का मोह न करने हेतु, निमंत्रण कार्ड न छपाने हेतु।
धार्मिक कार्य हेतु भी न धन याचना, चन्दा-चिट्ठा न करने हेतु।।

ग्रंथ प्रकाशन हेतु भी न याचना, भौतिक निर्माण न करने हेतु।
गाड़ी-नौकर न रखने हेतु, भक्त-शिष्यों से याचना न करने हेतु।।

दबाव-प्रलोभन से रहित हेतु, वर्चस्व-प्रतिस्पर्धा न करने हेतु।
उद्दण्ड-उच्छृंखलता त्यागने हेतु, हित-मित-प्रिय बोलने हेतु।।

देवशास्त्र-गुरु आज्ञा पालने हेतु, ज्ञान-वैराग्य बढ़ाने हेतु।
लौकिक जन सम्पर्क न करने हेतु, दुर्जन-संगति से रहित हेतु।।

संघ के अनुशासन पालन हेतु, ध्यान व अध्ययन करने हेतु।
गुरुजनों के बहुमान करने को, छोटों का आदर करने हेतु।।

अनावश्यक कोई भी काम न करना अनर्थ दण्ड से बचने हेतु।
स्व-स्व-कर्त्तव्य पालने हेतु, गृहस्थ-सांसारिक काम छोड़ने हेतु।।

हर जीवों से मैत्री हेतु, स्वधर्मी-विधर्मी से भी मित्रता हेतु।
गुणी जीवों से प्रमोद हेतु, दुःखी जीवों से करुणा हेतु।।

निन्दक विरोधियों से भी समता, सुख-दुःख में भी समता हेतु।
लाभ-अलाभ में भी समता, निन्दा-प्रशंसा में भी समता हेतु।।

आत्महित कल्याण प्रथम हेतु, परहित कल्याण आनुसंगिक हेतु।
स्व-दोष निवारण करने हेतु, परदोष अप्रगट करने हेतु।।

हर काम समय पर करने हेतु, आलस्य प्रमाद रहित हेतु।
स्व-विवेक से काम करके, दोषों को बार-बार न करने हेतु।।

योग्य आहार-विहार करने, भ्रमण-योगासन करने हेतु।
आहार में शांति अयाचना, स्वास्थ्यकर मर्यादा आहार हेतु।।

अस्वास्थ्यकर अनावश्यक विहार, उसके लिए न याचना हेतु।
किसी भी वस्तु की याचना, नहीं गुरु आज्ञा से प्राप्त करने हेतु।।

शक्ति से अधिक न तप करे, शक्ति से कम तप न करे।
अंतरंग तपस्या के महत्व, आत्मानुभव के महत्व हेतु।।

दीन-हीन-अहंकार त्याग कर, 'स्वाभिमान' 'सोऽहम्' 'अहं' भाव धारण हेतु।
गुण-गुणी प्रशंसा करके, नवकोटि से धर्म पालने हेतु।।

ईर्ष्या द्वेष घृणा त्यागने हेतु, संतोष-निस्पृह बनने हेतु।
संक्लेश-द्वन्द्व त्यागने हेतु, सरल-सहज बनने हेतु।।

इसी से लाभ हो रहे अनेक, ध्यान-अध्ययन होते सम्यक्।
समता-शांति-एकता रहती, संघ की व्यवस्था स्वयमेव होती।।

अध्ययन हेतु आते अनेक जन, विभिन्न संघ के साध्वी-श्रमण।
ब्रह्मचारी से लेकर विद्वान्गण, वैज्ञानिक-प्रोफेसर्स-जज-सज्जन।।

तन-मन-धन समय से करते सेवा, देश-विदेशों में (करते) धर्म प्रभावना।
संघ में अनेक शिक्षा-दीक्षाएँ (होती), आत्म प्रभावना प्रचुर होती।।

संघ की निन्दा या अप्रभावना न होती, संघ की गरिमा स्वयं बढ़ती।
शोध-बोध-मेरा होता प्रचुर, श्रद्धा-प्रज्ञा मेरी प्रखर होती।।

योग्य शिष्य भक्तों को ही मैं, अनुशासन करूँ आत्मविकास हेतु।
अयोग्य जन को संघ में न रखूँ, शुभ भावना सह यह सब करूँ।।

पहले (पहले) अनेक जन समझ न पाते, समझने पर गौरव करते।
स्व-भ्रांत धारणा को त्याग करते, समर्पण भाव से सेवा-दान करते।।

मेरा अनुशासन को बड़े-बड़े आचार्य भी श्रेष्ठ मानते।
स्व-संघ के साधु-साध्वियों को मेरा उदाहरण भी देते।।

अनुशासन भले मेरा कठोर मानते, अनुशासनहीनता की निन्दा न करते।
आगम-प्रायश्चित्त (ग्रंथ) मनोविज्ञान अनुसार, कनकसूरि अनुशासन करते।।

सीपुर, दिनांक 06.08.2016, रात्रि 10.52

कठोर भी गुरुवचन से भव्य जीव विकसित होता

(राग : छोटी-छोटी गैया.....)

श्लोक- विकासयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः।। (42 आत्मानुशासन)

हिन्दी- कठोर सूर्य किरणों से, यथा विकसित होता कमल।
कठोर भी गुरु कथन से, तथा विकसित भव्य कमल।।

श्लोक- लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाः पुराः।
दुर्लभाः कर्तुमद्यते वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।। (43 आत्मानुशासन)

हिन्दी- उभयलोक हितकर, वक्ता-श्रोता सुलभ पूर्वे।
पालन दुर्लभ पूर्व भी, वक्ता-श्रोता दुर्लभ अब।।

श्लोक- हितं हित्वाऽहिते स्थित्वा दुर्धीर्दुःखायसे भृशम्।
विपर्यये तयोरेधि त्वं सुखायिण्यसे सुधीः।। (46 आत्मानुशासन)

हिन्दी- हित त्यागकर अहित अपनाकर, दुर्बुद्धि से पाया दुःख अनेक।
विपरीत करो इसी से, सुख पाओगे बनो हे! सुबुद्धि।।

रहस्य- अनादि काल से मोह अज्ञान से, आवेशित हैं संसारी जीव।
इसी के कारण विपरीत भाव व, व्यवहार करते हैं संसारी जीव।। (1)

क्रोध-मान-माया-लोभ से ग्रसित, अन्याय अत्याचार करते दुराचार।
हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह सह, सप्त व्यसन सेवते अष्ट मद।। (2)

इनसे दूर करने हेतु, भव्य को देते हैं गुरु उपदेश।
सम्यग्दृष्टि से मुनि शिष्य को, शिक्षा-दीक्षा देते हैं गुरु विशेष।। (3)

अनुशासन या दोष दूर हेतु, गुरु जब बोलते हैं कठोर वचन।
भव्य जीवों का मन होता विकसित, सूर्य किरण से यथा पंकज।। (4)

यथा दयालु (सु) योग्य वैद्य द्वारा, चिकित्सा होती है विविध प्रकार।
लंघन विरेचन वस्तिकर्म स्वेदन, शल्यक्रिया आदि अनेक प्रकार।। (5)

तथापि रोगी जो निरोग इच्छुक, इससे न माने वैद्य को दुष्ट।
तथाहि भव्य जीव कटु वचन से, न माने गुरु को दुष्ट।। (6)

अपितु जो गुरु को माने भव्य जीव, परम-उपकारी उभय लोक हेतु।
भक्ति-श्रद्धा बहुमान सेवा से, कृतज्ञ बने आत्मकल्याण हेतु।। (7)

गुरु उपदेश बिना सम्यक्त्व ही, न होता भव्य जीवों को।
अतः गुरु को माने भव्य जीव महान्, ऐसा ही मान्य है 'कनक' को।। (8)

मेरी संशोधित परिवर्द्धित निःस्वार्थपूर्ण प्रति प्रश्नमय शिक्षा पद्धति

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

बाल विद्यार्थी काल से ही मैं पढ़ रहा हूँ व पढ़ाता हूँ।
हर विद्या को पढ़ता हूँ व अन्य को निःस्वार्थ रूप से पढ़ाता हूँ।।

सबसे सीखता हूँ सभी को सिखाता हूँ जो सुयोग्य होते हैं।
पशु-पक्षी-प्रकृति गुणी-दुर्गुणी, आबाल-वृद्ध से सीखता हूँ।। (1)

प्राचीन से लेकर आधुनिक शिक्षा पद्धति को अपनाता हूँ।
देश-विदेशों की शिक्षा पद्धति से सीखता हूँ व सिखाता हूँ।।

स्व-पर गलती से शिक्षा लेकर प्रगतिशील बनता हूँ।
नई-नई शिक्षा पद्धति से स्व-पर को उपकृत करता हूँ।। (2)

बच्चों को बच्चों की शिक्षा पद्धति से ज्ञानी को ज्ञानी पद्धति से।
सरल-सहज शिष्यों को सरल से अन्य का तज्योग्य पद्धति से।।

अनेकान्त व गणित पद्धति से, प्रत्यक्ष-अनुभव उदाहरणों से।
धीरे-धीरे मुझे अनुभव हो रहा है, शिष्यों को प्रतिप्रश्न करने से।। (3)

शिष्यों को अधिक सही ज्ञान होता है स्वयं को भी जोड़ने से।

शिष्यों को भी स्व-दोष-गुणों का सही परिज्ञान भी होता है।।

अपनी योग्यता व कमियों का, शिष्य व मुझे होता है।
जिससे शिष्य स्वयं को सुधार हेतु प्रयत्नशील होता।। (4)

प्रतिप्रश्न तो पहले मैं प्रायः प्रतिपक्ष जन को ही करता था।
शिष्य वर्ग को जो पाठ पढ़ाता हूँ उस संबंधी करता था।।

प्रतिप्रश्न नहीं करने से अधिसंख्य शिष्य भी नहीं समझते।
उपरोक्त गुण-दोष परिज्ञान हेतु, अधिक प्रयत्न न करते।। (5)

अनेक शिष्य तो कुछ विषयों में, संकीर्ण पूर्वाग्रही होते हैं।
जिसके कारण मेरे पवित्र भाव, कथन को विपरीत भी समझते।।

प्रतिप्रश्न सीधा व्यक्तिगत किये बिना, स्वयं में घटित न करते है।
प्रमाद-आलस्य अज्ञान के कारण, स्वयं का सुधार न करते हैं।। (6)

प्रतिप्रश्न से ये कमियाँ दूर होती, मुझे अधिक नहीं बोलना पड़ता।
समंतभद्र अकलंक वीरसेन स्वामी, सम ''कनक'' व्यवहार करता।।

सत्य जानने हेतु प्रश्न करना भी अंतरंग तप होता है।
ईर्ष्या द्वेष व घृणा रहित, निन्दा अपमान रहित है।। (7)

मुझे भी शोध-बोध करने का इसी से सहयोग मिलता है।
शिष्य वर्ग को भी जिज्ञासु बनने का इसी से सहयोग मिलता है।। (8)

सीपुर, दिनांक 13.09.2016, मध्याह्न 12.40 व 2.22